मुखपृष्ठ

मुखपृष्ठ पर गोलाकार में भक्त शिरोमणि मीरां नृत्य-मुद्रा में दिखलाई गई है। यह गोलाकार राजस्थान की कला का प्रतीक है, तथा मीरां राजपूत सामन्तशाही की देन है जो अब राजस्थान की संस्कृति का प्रतीक हो गई है। पृष्ठभूमि में सामन्तशाही के गढ़ ढहते हुए दिखलाये गये हैं तथा सामने जनता तिरंगे झण्डे लिए हुए आगे बढ़ रही है जो राजस्थान में राजनैतिक जागरण का संकेत है।

यादगार के रूप में निकाली जाने-वाली पुस्तिका सब कांग्रेस अधिवेशनों का एक अनिवार्य अंग बन गई है—वास्तव में यह चीज एक आवश्यकता की पूरक बन गई है। जयपुर अधिवेशन के अवसर पर जो पुस्तिका निकाली जा रही है उसके लिए मैं अपनी शुभकामनाएँ भेंट करता हूँ। यह वास्तव में प्रतिनिधियों तथा दर्शकों की जानकारी बढ़ाती है और मैं आशा करता हूँ कि इस महीने में जयपुर की यात्रा करने वाले इसका हार्दिक स्वागत करेंगे।

पट्टाभि सीतारामय्य

३-१२-१९४८

"राजस्थान दिग्दर्शन"

संकलन समिति

श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय, अजमेर

श्री केशरलाल अजमेरा जैन, जयपुर

श्री जवाहरलाल जैन, जयपुर

राजहंस प्रेस, दिल्ली

में मुद्रित

प्रस्तावना

कांग्रेस का अधिवेशन पहली बार राजपूताना में हो रहा है तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद पहला अधिवेशन होने के कारण विशिष्ट महत्व रखता है। इस ऐतिहासिक अवसर पर राजपूताना की स्थिति तथा उसके जीवन की एक झांकी प्रस्तुत करने तथा उसके ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक महत्व का कुछ परिचय कराने के उद्देश्य से स्वागत-समिति की प्रचार-प्रकाशन समिति ने एक सचित्र पुस्तिका प्रकाशित करने का सुझाव रक्खा जो स्वागत-समिति को पसन्द आया। प्रचार-प्रकाशन समिति ने इसकी सामग्री जुटाने का कार्य हम तीन सदस्यों को दिया और हमने इसे पूरा करने के लिये राजपूताना की सरकारों, कांग्रेस कमेटियों, संस्थाओं, आदि को पुस्तिका की रूपरेखा भेजकर उनसे आवश्यक जानकारी तथा चित्र भेजने का अनुरोध किया। परन्तु हमारी इस प्रार्थना का असर बहुत कम हुआ और दो एक जगह हुआ भी तो बहुत देर में और वह भी अपर्याप्त रूप में। तब हमने 'राजपूताना का इतिहास' के लेखक श्री जगदीश सिंह गहलोत के जिम्मे यह काम सौंपा। इन्होंने परिश्रम करके पुस्तिका के लिए काफ़ी सामग्री तैयार की तथा अपने संग्रह में से अनेक चित्र तथा ब्लाक भी दिये। छपाई की व्यवस्था में भी इनकी पूरी सहायता मिली। श्री चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय के प्रयत्न से अन्य स्थानों तथा महानुभावों से भी मूल्यवान सामग्री प्राप्त हुई तथा उन्होंने इस सब का संकलन तथा संपादन करके संजोया।

बीकानेर के श्री नरोत्तमदास स्वामी ने 'राजस्थानी भाषा तथा साहित्य' पर अंग्रेजी का लेख भेजा जिसका काफी उपयोग किया गया है। 'राजस्थान की कला' नामक भाग उदयपुर के श्री देवीलाल सामर का लिखा हुआ है।

राजनैतिक जागृति वाला अंश श्री शोभालाल गुप्त ने लिखकर दिया है। अजमेर की राजपूताना म्यूज़ियम के क्यूरेटर श्री उपेन्द्रचन्द्र भट्टाचार्य ने कई उपयोगी सुझाव दिये तथा पांच ब्लाक भी भिजवाये। जयपुर म्यूजियम के क्यूरेटर श्री सत्यप्रकाश के कई लेखों से अच्छी सहायता मिली। जयपुर के श्री राजमल संघी ने भी कुछ अंशों के संपादन में सहायता दी।

मुखपृष्ठ का कलापूर्ण तथा भावपूर्ण चित्र प्रसिद्ध राजस्थानी चित्रकार श्री इन्द्रदूगड़ (शान्तिनिकेतन) तथा श्री गोवर्द्धनलाल जोशी (नाथद्वारा) का तैयार किया हुआ है। अपनी चित्रकला के कई और नमूने भी इन्होंने दिये हैं। जयपुर के लब्ध-प्रतिष्ठ चित्रकार श्री रामगोपाल विजयवर्गीय ने एक चित्र अपना चित्रित किया हुआ तथा एक चित्र अपने संग्रह में से दिया है।

जयपुर-कांग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष डा० पट्टाभि सीतारामय्या ने भी पुस्तिका के लिए अपनी शुभ कामनाएं भेज कर इसके गौरव को बढ़ाया है, इसके लिए हम उनके अत्यधिक कृतज्ञ हैं।

भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग की सेन्ट्रल एशियन एन्टिक्विटीज़ म्यूज़ियम के सुपरिन्टेन्डेन्ट डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने राजस्थानी कलम के चित्रों के सत्रह फोटो तथा ऐतिहासिक महत्त्व के स्थानों के इक्कीस फोटो भिजवाने की कृपा की तथा उन्हें छापने की अनुमति प्रदान की।

यद्यपि यह पुस्तिका मूल योजना के अनुसार सर्वांगपूर्ण नहीं बनाई जासकी, फिर भी हमें आशा है कि यह अपने नाम को किसी अंश तक सार्थक करेगी तथा राजस्थान के निवासियों को अपनी भूमि के गौरव का भान कराने और इतर प्रान्तवासियों के हृदय में राजस्थान के सम्बन्ध में दिलचस्पी पैदा करने में समर्थ होगी।

अन्त में हम राजहंस प्रेस के अधिकारियों तथा कर्मचारियों को धन्यवाद देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि उन्होंने बहुत थोड़े समय में बड़ी लगन के साथ इस पुस्तिका की छपाई की व्यवस्था करदी।

— चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय
केशरलाल अजमेरा जैन
जवाहरलाल जैन

जयपुर, १ दिसम्बर, १९४८

राजपूताने की श्रृंगारिक कला का एक नमुना
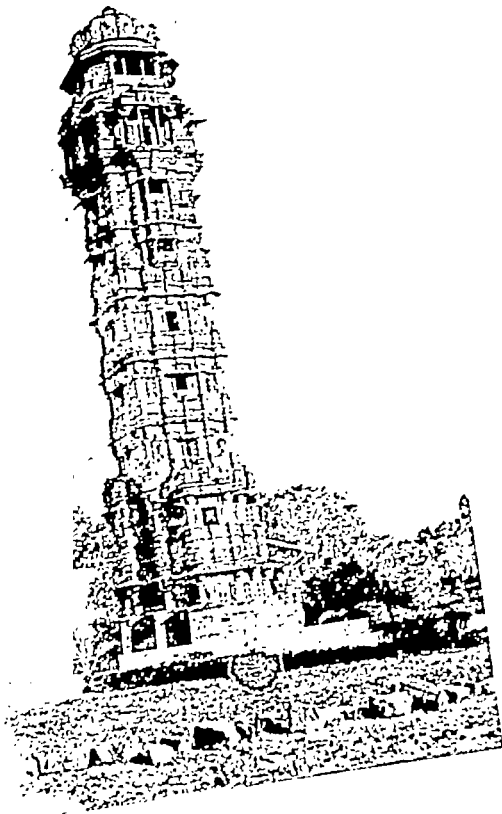
कीर्तिस्तम्भ

वीरों तथा वीरांगनाओं की भूमि राजस्थान के नाम से भारत के प्रायः सभी लोग परिचित हैं। केवल परिचित ही नहीं बल्कि प्रभावित भी हैं। राजस्थान की रियासतों के समूह की राजनैतिक इकाई का राजपूताना नाम अंग्रेज़ों का दिया हुआ है। पर भारतवासी जिस वीरभूमि को राजस्थान के नाम से जानते हैं वह कोई भौगोलिक अथवा राजनैतिक वस्तु नहीं है। वह तो वास्तव में वीरता, शौर्य, त्याग, उत्सर्ग और बलिदान का एक प्रतीक है जो हृदय में अपूर्व स्मृतियाँ तथा भावनाएँ जागरित कर देता है तथा जिसके सम्बन्ध में 'ऐनल्स एण्ड ऐंटिक्विटीज़ आफ़ राजस्थान' के लेखक जेम्स टाड का मत है कि "राजस्थान में कोई छोटी-से-छोटी रियासत भी ऐसी नहीं जिसमें थर्मापली (जैसी रणभूमि) न हो तथा कोई नगर ऐसा नहीं जिसने लियोनिडास (जैसा योद्धा) उत्पन्न न किया हो।" यह राजस्थान तो राजपूतों की 'रजपूती' तथा जौहर व्रत का; पृथ्वीराज को बचाने के लिए अपने शरीर का मांस काट-काट कर गिद्धों को खिलाने वाले संजमराय का; सतीत्व की रक्षा के लिए पद्मिनी तथा अन्य राजपूत ललनाओं के रोमांचकारी अग्नि प्रवेश का; मीरा के उत्कट कृष्ण प्रेम का; पन्ना धाय तथा गोरा धाय अपूर्व स्वामिभक्ति का; प्रताप के देशाभिमान का तथा उनकी सहायता के लिए अपना धन अर्पण करने वाले सेठ भामाशाह का; गोरा और बादल, जयमल और पत्ता के उत्सर्ग का; वीर हम्मीर, राणा सांगा और दुर्गादास राठौर की युद्ध-वीरता का; तेजाजी, पाबूजी राठौड़, रामदेव जी, आदि जनता के सन्त-वीरों का; हिन्दुओं के तीर्थ-गुरु पुष्कर तथा मुसलमानों की सबसे बड़ी ज़ियारतगाह अजमेर की दरगाह का; चित्तौड़ और रणथम्भोर के ऐतिहासिक दुर्गों का; हल्दीघाटी के रण क्षेत्र का; पृथ्वीराज और वीसलदेव की वीरगाथाओं का; दादू और उनके शिष्य सुन्दरदास की अमृतमयी वाणियों का; बिहारी की शृङ्गारमयी कविता का; राजस्थानी कलम की भावपूर्ण विशिष्ट चित्रावली का; आबू में प्रस्तर कला के चमत्कार देलवाड़ा के मन्दिरों और उनके निर्माता वस्तुपाल और तेजपाल का; जयपुर नगर के सौन्दर्य तथा उसे बसाने वाले महाराजा जयसिंह (द्वितीय) की सर्वतोमुखी प्रतिभा का; तथा जनता के जीवन में रंग और रंगीनियों के प्राचुर्य्य का; वह राजस्थान है जिसका गौरवपूर्ण इतिहास भारत के इतिहास के साथ गुंथा हुआ
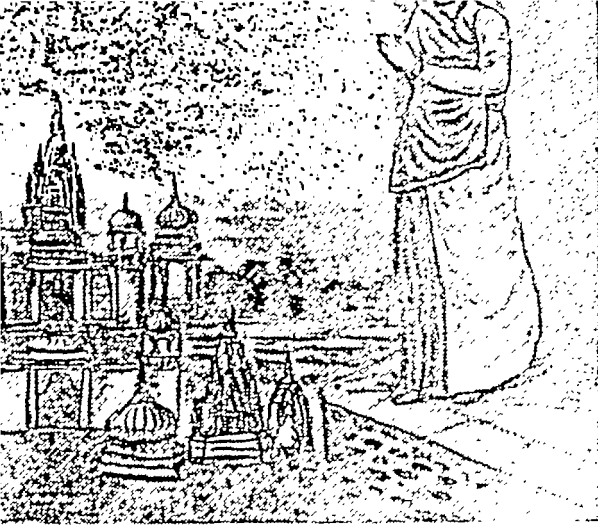
मीरा
जोधपुर के किले में अंकित
चित्र
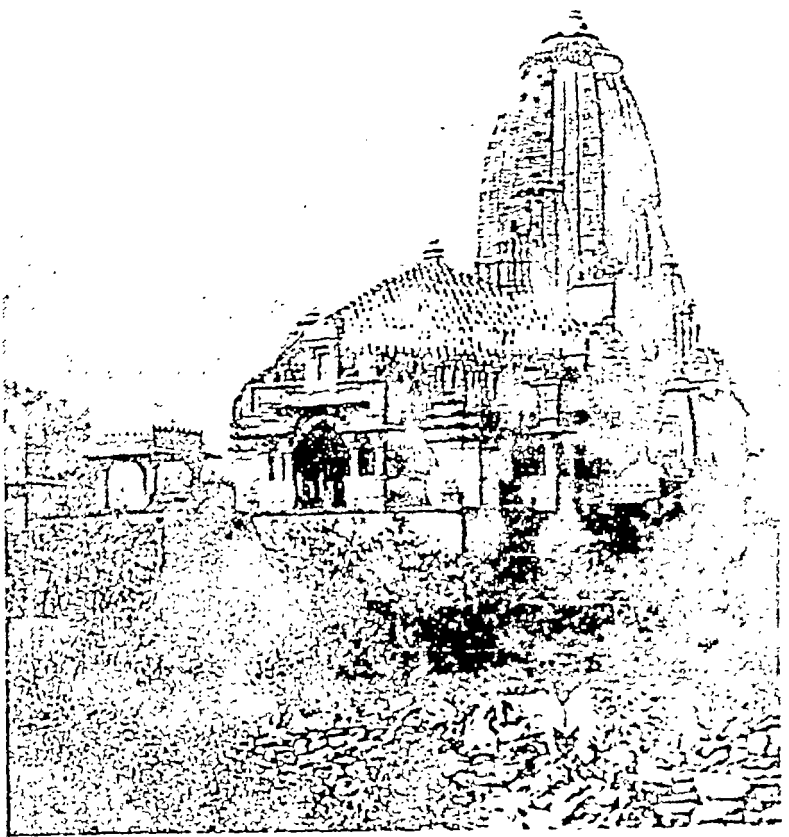
है तथा जिसने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सारे भारत के जीवन पर अपना प्रभाव डाला है।

अत्यन्त प्राचीन काल में इसी भूमि के पुष्कर क्षेत्र को ब्रह्माजी ने अपने यज्ञ के लिए पसन्द किया। सब तीर्थों का गुरु पुष्कर सारे हिन्दू जगत् में पूज्य है क्योंकि इसकी यात्रा के बिना अन्य तीर्थों का पूरा फल प्राप्त नहीं होता। यहीं ब्रह्माजी का मन्दिर है जो सारे देश में अकेला है। सावित्री के मन्दिर के दर्शनार्थ सुदूर बंगाल से अनेक यात्री आते हैं तथा स्त्रियां अखण्ड सौभाग्य की प्रार्थना करती हैं।

यद्यपि इस भू-भाग के अतीत पर अंधकार का पर्दा पड़ा हुआ है तब भी जो कुछ सामग्री हमें जयपुर राज्यस्थित बैराट व रैढ़ तथा जोधपुर बीकानेर, तथा जैसलमेर में प्राप्त हुई है, वह हमें प्रागैतिहासिक प्राचीन मानव सभ्यता से सम्बन्ध रखने वाले उपादानों को जुटाने में बहुत सहायक है। बैराट में प्राप्त 'चर्ट-फ्लेक तथा कोर' व रैढ़ में प्राप्त सिन्ध की घाटी के मकानों में प्रयुक्त ईंटों के नमूने यह सिद्ध करते हैं कि राजस्थान का उत्तर-पश्चिमी हिस्सा प्रागैतिहासिक सभ्यता के केन्द्र-विशेष का एक भाग था।

यही नहीं, राजपूताने में खानों की स्थिति तथा सिन्ध नदी के आस-पास खानों का अभाव, लेकिन खुदाई में मोहन जो दड़ो और हड़प्पा में पत्थर, कांसे आदि की बनी हुई दैनिक प्रयोग की वस्तुओं की प्राप्ति, यह बतलाती है कि सम्भवतः सिन्ध की घाटी की द्रविड़ जाति का एक उपनिवेश सिन्ध-प्रदेश में निवास करता रहा होगा और दूसरा नीचे की ओर राजपूताने की तांबा और संगजीरे की खानों के आस-पास।

महाभारत के समय से पूर्व भी, जैसा कि हमें वाल्मीकि रामायण से ज्ञात होता है, जयपुर राज्य के दक्षिण-पूर्वी कोने में चम्बल और व्यास के सङ्गम पर, जिसे अब रामेश्वर तीर्थ कहते हैं, भगवान् रामचन्द्र एक रात्रि वन जाते हुए ठहरे थे।

महाभारत का खांडव वन, जिसे नष्ट करके अर्जुन ने मनुष्यों के निवास योग्य बनाया तथा विराट् देश, जहां पाण्डवों का अज्ञातवास पूरा हुआ, राजस्थान के ही भाग हैं। जयपुर का बैराट नामक कस्बा आज उसी प्राचीन विराट्
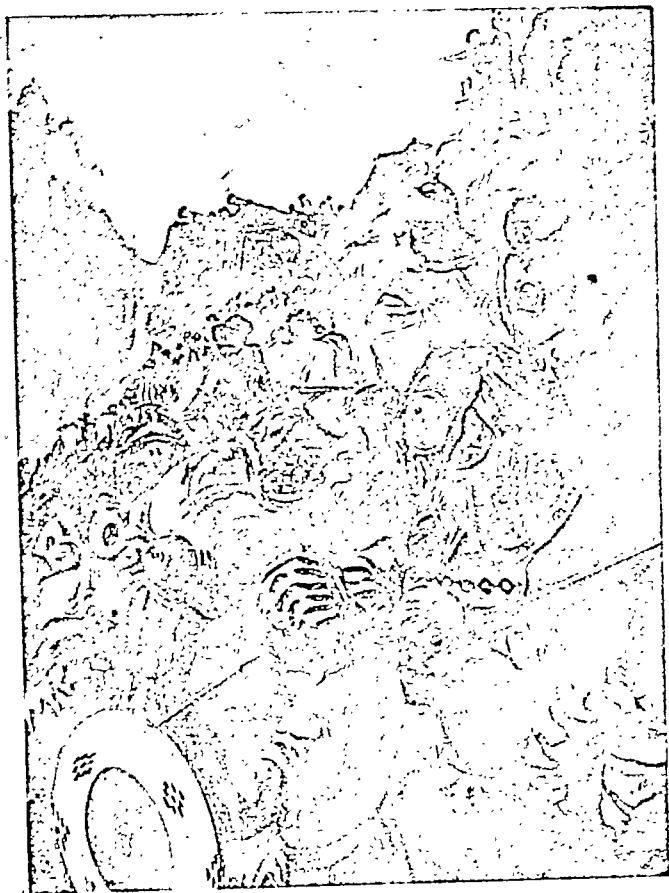
रणथम्भौर का युद्ध
[जयपुर]

नगर की याद दिलाता है। महाभारत की कई महत्वपूर्ण घटनायें, जैसे, अर्जुन का कौरवों से युद्ध, कीचक वध, उत्तरा के साथ अभिमन्यु का विवाह, आदि, इसी प्रदेश में घटित हुईं।

यद्यपि महाभारत काल के पश्चात् के लगभग सात-आठ सौ वर्षों का इस प्रदेश सम्बन्धी इतिहास अभी तक अज्ञात है, पर इतना हमें अवश्य पता लगता है कि महामना महावीर ने यहाँ के कुछ प्रदेशों में भ्रमण किया था और अपने कुछ शिष्य इस भू-भाग विशेष से प्राप्त किए थे। देवसेनाचार्य कृत एक ग्रन्थ के आधार पर यह ज्ञात होता है कि इस स्थान ने कई जैन महात्माओं को अपने यहाँ स्थान दिया, और बहुत से उच्चकोटि के जैन ग्रन्थ यहाँ रचे गए।

मौर्य वंशीय राजाओं का तो अधिकार इस भू-भाग पर था ही। और इसी कारण अशोक के दो शिलालेख यहाँ बैराठ में प्राप्त हुए हैं। उत्तर-पश्चिम से भारत में आने वाले यूनानियों का भी अधिकार यहाँ था। चित्तौड़ के पास नगरी नामक स्थान में जो भग्नावशेष हैं वे इस बात की पुष्टि करते हैं कि माध्यमिका नामक प्राचीन नगर यहीं था।

मध्य-युग में सांभर तथा अजमेर के चौहानों का दिल्ली तक पर आधिपत्य रहा है। इस्लाम के पूजनीय सूफी सन्त ख्वाजा मुईउद्दीन चिश्ती ने अजमेर को ही अपना केन्द्र बनाया था।

मुगलकाल में जहां एक ओर राजपूतों ने मुगलों से लोहा लिया वहां दूसरी ओर राजा मानसिंह तथा मिर्ज़ा राजा जयसिंह ने मुगल साम्राज्य के विस्तार में महत्वपूर्ण भाग लिया।

भारत के अनेक राजघरानों का सम्बन्ध मेवाड़ के राजवंश से है। मेवाड़ के गहलोत राजवंशियों नें देश के विभिन्न भागों में जाकर अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किये। इनमें सबसे महत्वपूर्ण नैपाल का राजघराना है। कहते हैं शिवाजी ने भी गहलोत वंश में ही जन्म लिया था। सौराष्ट्र में भावनगर, पालिताणा, लाठी, राजपीपला तथा धर्मपुर के, मालवा में बड़वानी के, तथा दक्षिण में मुधोल, कोल्हापुर, सावन्तवाड़ी, विजियानगरम् तथा तंजोर के राजघराने मेवाड़ के गहलोत वंश के ही माने जाते हैं।

इस प्रकार महाभारत काल से लगा कर अंग्रेज़ों के आगमन तक

हल्दी घाटी का युद्ध
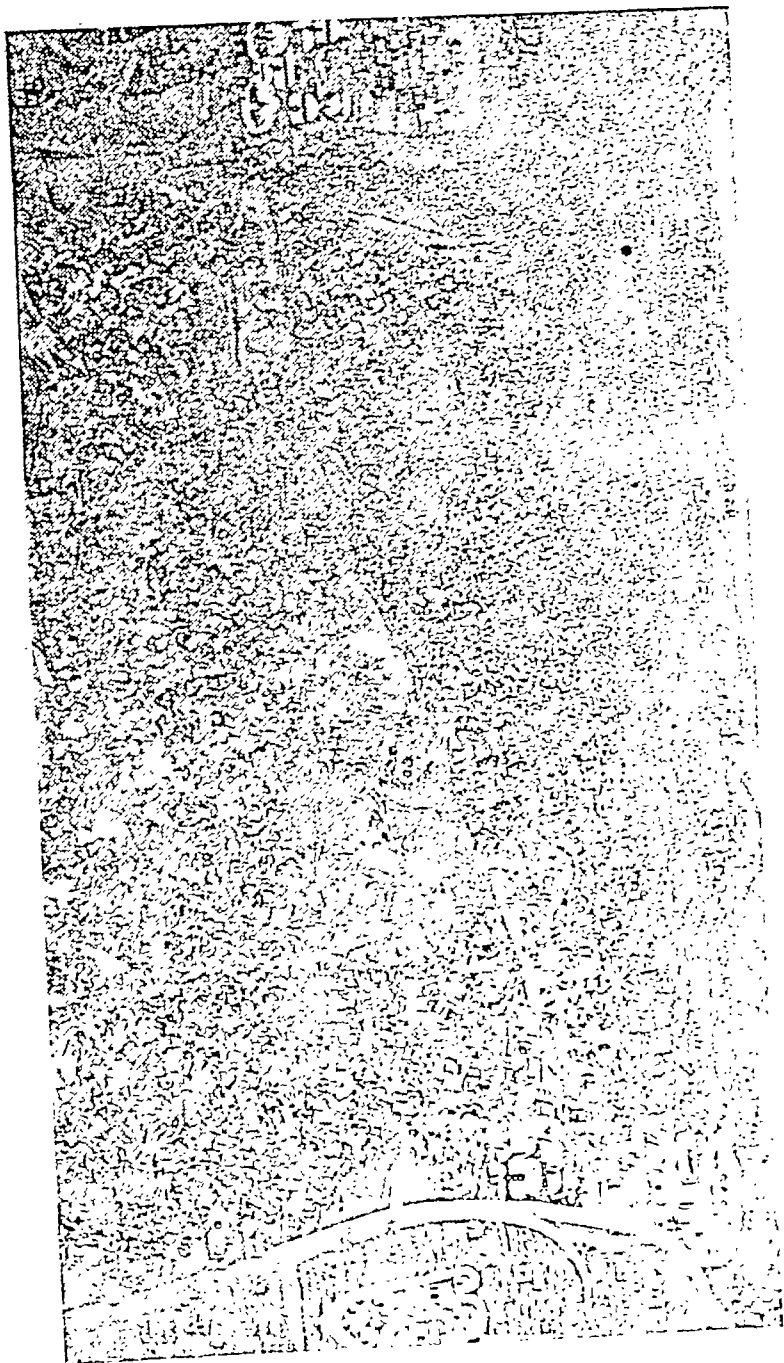
राजपूताना का ऐतिहासिक तथा सामरिक महत्व रहा है। मुग़ल काल में तो यह दक्षिण भारत की कुञ्जी था क्योंकि दक्षिण भारत पर अधिकार करने के लिए राजपूताना पर अधिकार होना आवश्यक था। अब पाकिस्तान की सीमा पर होने के कारण राजपूताना का राजनैतिक तथा सामरिक महत्व फिर बढ़ गया है। वैसे भी राजपूताना भारत का 'हृदय-स्थान' है।

हिन्दी भाषा के आदि-कवि माने जाने वाले चन्दबरदाई को राजस्थान ने ही उत्पन्न किया। भक्त मीरां के पदों का सारे देश में प्रचार है, यहां तक कि मीरां राजस्थान की संस्कृति का एक प्रतीक मानी जाने लगी हैं।

ललित कलाओं के क्षेत्र में देखें तो उत्तर-भारतीय संगीत के संरक्षण का बहुत कुछ श्रेय राजस्थान को ही है। मुगल साम्राज्य के पतन के बाद तानसेन के तथा अन्य गायकी घरानों के गायकों तथा वाद्यकारों को राजपूताना के दरबारों में ही आश्रय मिला। इन्होंने नृत्य कला को भी प्रोत्साहन दिया और जयपुर इस कला का एक प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। राजपूत कलम के राग-माला चित्रों में सङ्गीत के रसों का जो भावपूर्ण चित्रण हुआ है, उसकी कला-मर्मज्ञों ने बड़ी सराहना की है। मेवाड़ के महाराणा कुम्भा स्वयम् एक प्रवीण सङ्गीतज्ञ थे तथा उन्होंने सङ्गीत पर कई ग्रन्थ भी लिखे। इसी मेवाड़ में उन्नीसवीं शताब्दी में कृष्णानन्द व्यास ने 'सङ्गीत राग कल्पद्रुम' नामक एक बृहद् ग्रन्थ का सङ्कलन किया। चित्रकला की दृष्टि से राजस्थानी कलम एक विशिष्ट शैली है जिसका प्रभाव मुगल तथा पहाड़ी कलमों पर पड़ा है।

धार्मिक क्षेत्र में भी राजस्थान का महत्व कम नहीं है। यहां के अनेक सन्तों की वाणियां लोक-जीवन में ओत-प्रोत हो गयी हैं। दादू के दोहों का विशेष प्रचार हुआ है। राजस्थान जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र है तथा ऋषभदेव का जैन मन्दिर सब धर्मों के समन्वय का एक महान् उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसमें अन्य धर्मों की मूर्त्तियां तो हैं हीं, एक आला भी है जिसकी पूजा मुसलमान लोग करते हैं। नाथद्वारा की यात्रा को दूर-दूर से लोग आते हैं। ऋषि दयानन्द भी राजस्थान को ही अपने प्रचार का केन्द्र बनाना चाहते थे। उनकी उत्तराधिकारिणी परोपकारी सभा का कार्यालय अजमेर में है जहां से ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का प्रकाशन होता है।

राजस्थान की कारीगरी तो देश भर में प्रसिद्ध है। भारत में रत्नों की तराशी करनेवाले कारीगरों का जयपुर एक प्रसिद्ध केन्द्र है। जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, अलवर, अजमेर, बीकानेर आदि की रंगाई, लकड़ी का काम, गोटे का काम, ऊनी लोहियां, चमड़े का काम, आदि दस्तकारियां मशहूर हैं। उत्तर भारत में तलवार का नाम 'सिरोही' तथा कटार का नाम 'करौली' सिरोही की तलवारों तथा करौली की कटारों की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं।

उज्जैन, बनारस, दिल्ली तथा जयपुर की वेधशालाएँ जयपुर के बहुमुखी प्रतिभाशील महाराजा जयसिंह (द्वितीय) की कीर्ति के के साथ-साथ राजस्थान का भी गौरव बढ़ा रही हैं।

अलंकारिक भाषा में यदि कहा जाय तो देश भर में कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा जिसने राजपूताना का नमक न खाया हो। सांभर झील, जिसके कारण कई प्रदेशों में नमक को ही 'सांभर' कहा जाता है, राजपूताना की एक विख्यात चीज़ है।

बंग-भंग के पश्चात् बंगाल के क्रान्तिकारियों ने मेवाड़ के इतिहास से प्रेरणा तथा स्फूर्त्ति प्राप्त की। रियासतों में पुलिस की उतनी सतर्कता न होने के कारण क्रान्तिकारी लोग अक्सर छिपने तथा गुप्त मन्त्रणाएं करने के लिए राजपूताना में आया करते थे। अजमेर में इनका एक मुख्य केन्द्र था।

गांधीजी के सत्याग्रह का सबसे पहला सफल प्रयोग करने का श्रेय मेवाड़ में बिजोलिया के किसानों को है। राजस्थान के आधुनिक इतिहास में यह आन्दोलन स्वर्णाक्षरों में लिखा जाने वाला है।

अजमेर में मुस्लिम संस्कृति का केन्द्र होने के कारण तथा राजपूत राजाओं का मुगल दरबार से सम्बन्ध होने के कारण राजस्थान में हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृतियों का जैसा सम्मिश्रण हुआ है वैसा देश के अन्य किसी भाग में नहीं हुआ। आज भी राजस्थान में साम्प्रदायिक समस्या नहीं है तथा हिन्दू और मुसलमान मेल जोल से रह रहे हैं। कहीं-कहीं तो बोली, पहनावा, आदि एक-सा होने के कारण हिन्दू और मुसलमान का भेद नहीं पहचाना जाता।

राजस्थान के निवासी देश के कोने-कोने में फैले हुए हैं तथा अपनी व्यवसाय बुद्धि से इन लोगों ने अपने लिए देश के आर्थिक जीवन में एक विशेष

स्थान प्राप्त कर लिया है। यद्यपि मारवाड़ राजस्थान के एक भाग का ही नाम है, परन्तु मारवाड़ी शब्द आजकल सब राजस्थान निवासियों का द्योतक बन गया है। राजस्थान के बाहर यहां के सब निवासी मारवाड़ी के ही नाम से विख्यात हैं। युक्तप्रान्त में पुराने बसे हुए मारवाड़ी बोहरे या चूड़ीवाल कहलाते हैं। इन्होंने तो युक्तप्रान्त की भाषा तथा वेश-भूषा को भी अपना लिया है। आजकल देश के वाणिज्य-व्यवसाय तथा उद्योग-धन्धों में मारवाड़ियों का बहुत बड़ा हाथ है। राजनीति में भी मारवाड़ियों का काफी प्रवेश है। स्व० सेठ जमनालाल बजाज के नाम से देश का हरेक व्यक्ति परिचित है। इनकी जन्मभूमि जयपुर राज्य का सीकर ठिकाना है।

समग्र राजपूताना का ऐतिहासिक तथा लोकप्रिय नाम 'राजस्थान' इन दिनों इस प्रान्त को कुछ रियासतों की एक संयुक्त इकाई विशेष ने छीन लिया है। परन्तु वह दिन शायद दूर नहीं है जब राजपूताना की वर्तमान सारी इकाइयां बृहत्तर राजस्थान के रूप में सम्मिलित तथा संगठित होकर इस वीर-भूमि के नाम को फिर प्रतिष्ठित तथा गौरवान्वित करेंगी। सम्भव है इस पुस्तिका के प्रकाशित होते-होते बृहत्तर राजस्थान प्रान्त निर्माण होने की शुभ-सूचना मिल जाय।

पुराने महल—कोटा

राजपूताना
पाकिस्तान
भावलपुर
हिसार
प्रान्त
हनुमानगढ़
जैसलमेर
बाड़मेर
सिरोही
आबू
पालनपुर
बम्बई
प्रान्त
उदयपुर
भीलवाड़ा
कोटा
मथुरा
मध्य
भारत
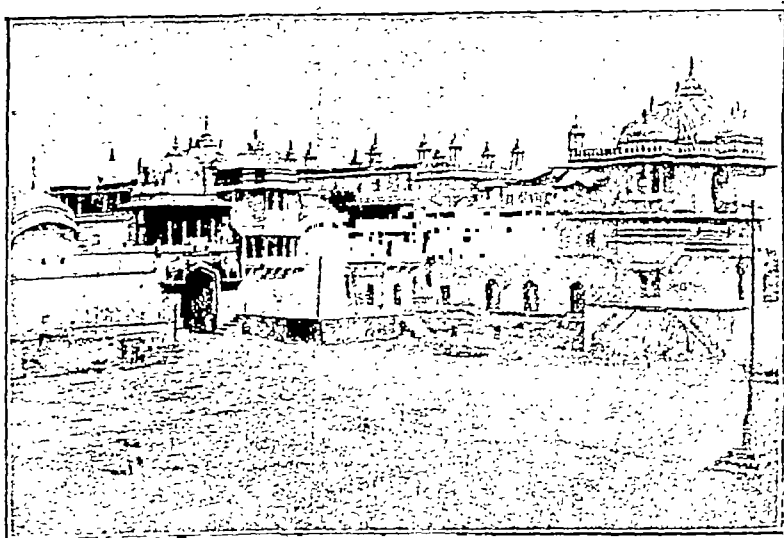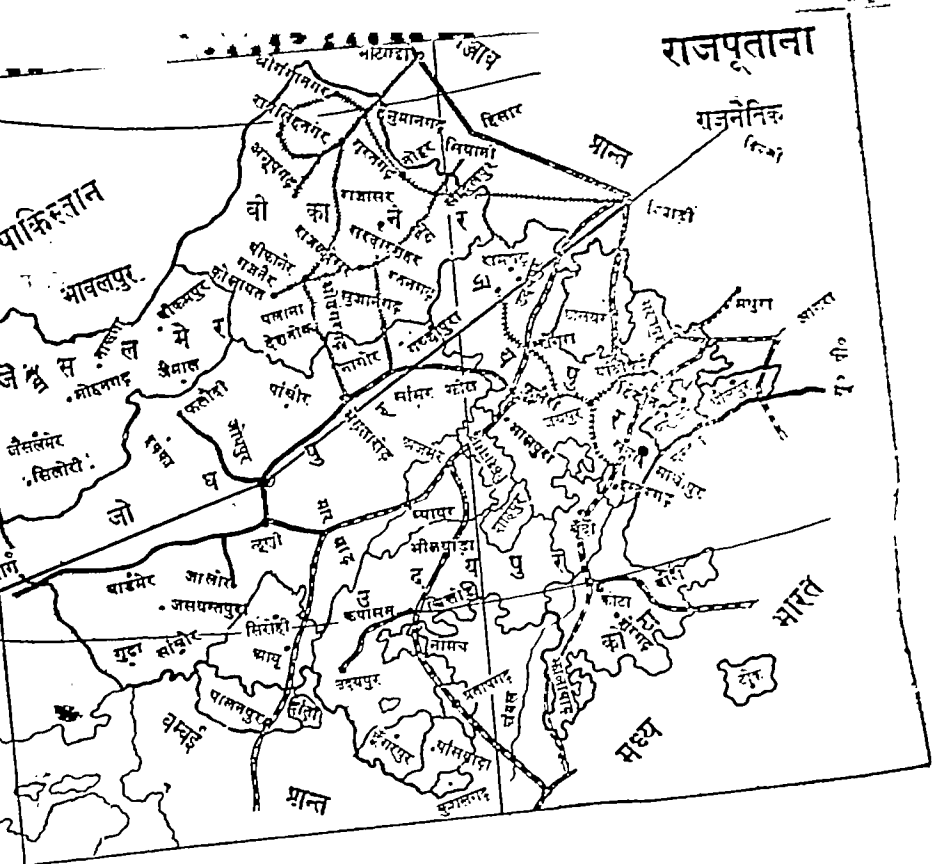
भौगोलिक विवरण

वर्तमान राजपूताना का आकार एक पतंग के समान है। यह २३° ३′ से ३०° १२′ उत्तर अक्षांश और ६९° ३०′ से ७८° १७′ पूर्व देशान्तर के बीच फैला हुआ है। इसके उत्तर और उत्तर-पूर्व में पूर्वी पंजाव, उत्तर-पश्चिम में पाकिस्तान का वहावलपुर राज्य, पूर्व में संयुक्तप्रांत और मध्यभारत संघ, दक्षिण में मध्यभारत, सौराष्ट्र तथा कच्छ की खाड़ी, और पश्चिम में पाकिस्तान है।

राजपूताना प्रांत में अगस्त १९४७ ई० से पूर्व इकीस देशी राज्य तथा कुशलगढ़ और लावा नामक दो खुद-मुख्तियार ठिकाने थे और बीचोंवीच अंग्रेज सरकार द्वारा शासित अजमेर-मेरवाड़ा का छोटा-सा इलाका था।

नीचे की तालिका में राजपूताना तथा उसकी विभिन्न इकाइयों के क्षेत्रफल तथा आवादी (१९४१ ई०) के आंकड़े दिये गये हैं—

	क्षेत्रफल	आवादी
राजपूताना	१,३४,६५६ वर्गमील	१,४२,५३,९०१
अजमेर-मेरवाड़ा	२,४०० ,,	५,८३,६९३
जयपुर	१५,६१० ,,	३०,४०,८७३
जैसलमेर	१५,९८० ,,	९३,२४६
जोधपुर (मारवाड़)	३६,१२० ,,	२५,५५,९०४
वीकानेर	२३,१८१ ,,	१२,९२,९३८
मत्स्य संघ		
अलवर	३,१५८ ,,	८,२३,०५५
करौली	१,२२७ ,,	१,५२,४१३
भरतपुर	१,९५८ ,,	५,७५,६२५
धौलपुर	१,०७३ ,,	२,८६,९६१
संयुक्त राजस्थान राज्य		
उदयपुर (मेवाड़)	१३,१७० ,,	१९,२६,६९८
किशनगढ़	८७३ ,,	१,०४,१२७
कोटा	५,७१४ ,,	७,७७,३९८
झालावाड़	८२४ ,,	१,२२,२९९

टोंक	२,५४३	,,	३,५३,३८७
डूंगरपुर	१,४६०	,,	२,७४,२८२
प्रतापगढ़	८७३	,,	९१,९६७
बांसवाड़ा	१,६०६	,,	२,५८,७६०
बूंदी	२,२९५	,,	२,४९,६७५
शाहपुरा	४०५	,,	६१,१७३
सिरोही	१,९८८	,,	२,३३,८७९

आबादी के ये आंकड़े पूरी तरह सही नहीं माने जा सकते। एक तो १९४१ ई० की जन गणना ही कांग्रेस के बायकाट के कारण ठीक नहीं हुई थी, दूसरे पाकिस्तान की स्थापना के बाद आबादी में और उसके हिन्दू-मुस्लिम अनुपात में काफी परिवर्त्तन हुआ है। पिछले सात वर्षों में आबादी बढ़ी भी है। इस समय

देवोली परीक्षा
[क्यूरेटर, राज० म्यू० के सौजन्य से]
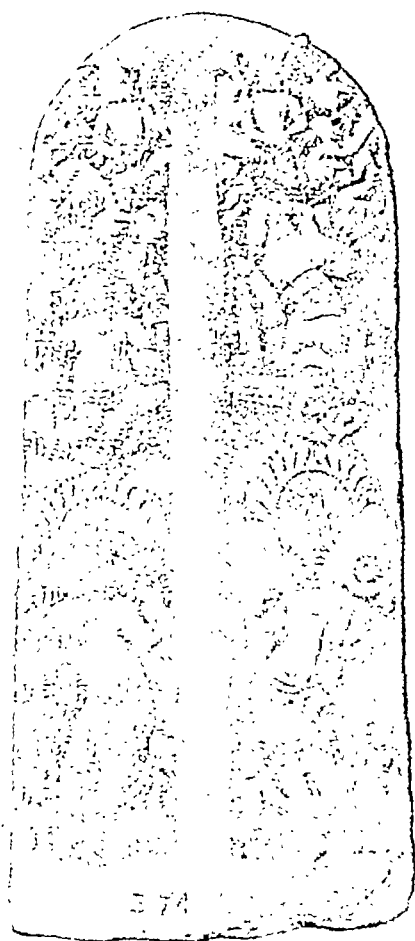
राजपूताना में दो लाख के लगभग शरणार्थी हैं जिनमें अधिकांश सिंधी हैं। अजमेर-मेरवाड़ा, जोधपुर तथा जयपुर में इनकी संख्या सबसे अधिक है। इस लिहाज़ से राजपूताना की वर्तमान जनसंख्या पौने दो करोड़ के लगभग पहुँच गई है।

पहाड़

इस प्रांत की प्राकृतिक बनावट समझने के लिये प्रथम आड़ावला (अरावली) नामक पर्वत श्रेणी की स्थिति का ज्ञान कर लेना चाहिए। राजपूताना को दो प्राकृतिक विभागों में बांटने वाली यह पर्वतमाला दिल्ली के पास से शुरू होकर अलवर, शेखावटी, अजमेर-मेरवाड़ा, सिरोही होती हुई महीकांठा (गुजरात) तक पहुँची है। इसकी लम्बाई लगभग ३०० मील है। इसके पश्चिमी ओर का भाग रेतीला मरुस्थान है जिसमें आबादी दूर-दूर है और जो पानी की कमी होने से उपजाऊ नहीं है। पूर्व की ओर का भाग पहाड़ी, सजल व उपजाऊ है। इसकी सब से ऊंची चोटी आबू पहाड़ (अर्बुदाचल) की 'गुरु-शिखर' है जो समुद्र की सतह से ५,६५० फुट ऊंची है। हिमालय और नीलगिरी के बीच में यह सबसे ऊँची चोटी है। दक्षिण-पूर्व के हिस्से में एक और पर्वत श्रेणी है, जिसे पथार कहते हैं। यह पर्वतमाला पूर्व की ओर ग्वालियर तक गई है। पथार के साथ-साथ करकोट नाम की पहाड़ियां भी हैं, जिनमें रणथम्भोर, बूंदी और इन्द्रगढ़ के किले हैं।

भरतपुर रियासत में भी एक पर्वत माला निकली है जिसकी सबसे ऊंची आलीपुर की पहाड़ी १,३५७ फुट ऊंची है। इसके दक्षिण में करौली की पहाड़ियां हैं जिनकी ऊंचाई १,६०० फुट से अधिक नहीं है। दक्षिण-पश्चिम में एक नीची पहाड़ियों की कतार है जो उदयपुर के मांडलगढ़ से शुरू होकर बूंदी होती हुई कोटा में इन्द्रगढ़ तक गई है। इनको बूंदी की पहाड़ियां कहते हैं। इनके सिवाय मुकंदड़ा नाम की पर्वतश्रेणी भी कोटा के दक्षिण-पश्चिम से लेकर झालरापाटन (ब्रजनगर) तक फैली हुई है। यों तो राजपूताना भर में ही, सिवाय मारवाड़ के रेतीले टीलों के, जहां-तहां छोटी-छोटी पहाड़ियाँ पाई जाती हैं, परन्तु विशेषकर उदयपुर, बांसवाड़ा, डूंगरपुर और अजमेर-मेरवाड़ा में उनकी बहुतायत है। अजमेर में तारागढ़ पहाड़ की ऊंचाई ३००० फुट के

सरस्वती की संगमरमर
की मूर्ति
बीकानेर म्यूजियम

८ ये प्रतिमाएं लंदन की
प्रदर्शिनी में भेजी गईं

केश-विन्यास
[क्यूरेटर राज० म्यू० के
सौजन्य से]
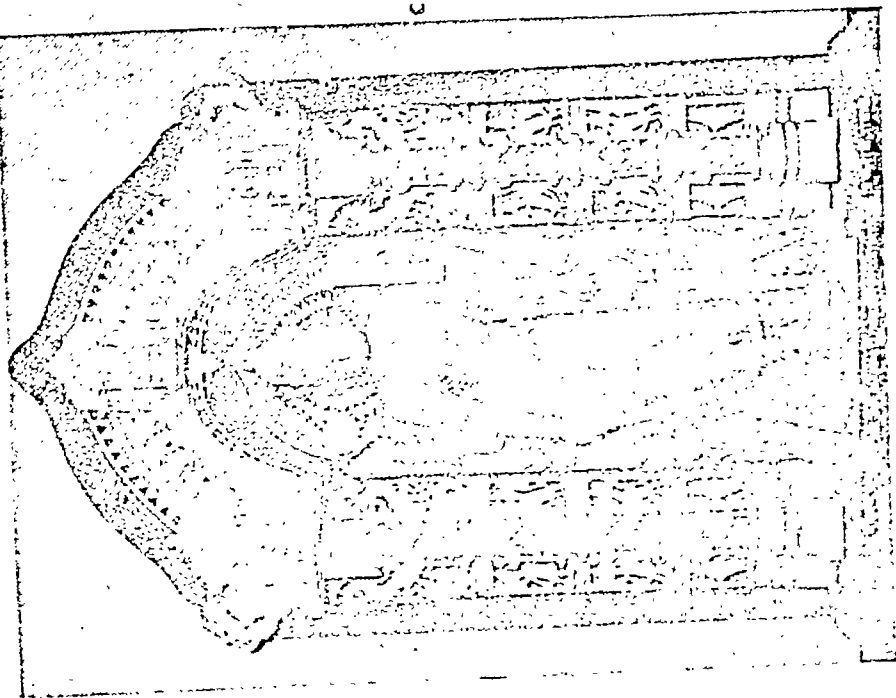
लगभग है।

नदियां

राजपूताना की सबसे बड़ी नदी चम्बल है जो दक्षिण-पूर्व के भाग में है और बारहों मास बहती है। यह मध्य-प्रदेश से निकल कर राजपूताना के दक्षिण-पूर्वी भाग को सींचती हुई संयुक्तप्रांत में इटावा के पास यमुना में जा मिलती है। इसकी पूरी लम्बाई ६५० मील है। इसको सहायक नदियां काली-सिंध, पार्वती, और बनास हैं। बनास मेवाड़ में कुम्भलगढ़ के पास के पर्वतों से निकल कर रामेश्वर तीर्थ के पास चम्बल में गिरती है। गर्मियों में इसमें पानी नहीं रहता। माही नदी विन्ध्याचल पहाड़ से निकल कर दक्षिणी राजपूताना को काटती हुई गुजरात में चली गई है और साबरमती में जा मिली है। उत्तर-पश्चिम के भाग में मुख्य नदी लूंणी है जो पुष्कर से निकलकर मारवाड़ (जोधपुर) में होती हुई कच्छ (गुजरात) के रण में गिरती है। यह बरसाती नदी है और इसका पानी खारी होने से यह 'लूंणी' कहलाती है।

झीलें

राजपूताने में मीठे पानी की कोई प्राकृतिक झील नहीं है। खारी पानी की अति प्रसिद्ध झील सांभर है जो समुद्र सतह से १,२०० फुट ऊँची है। यह जयपुर और जोधपुर की सरहद पर है। वर्षा में जब यह नदी-नालों के पानी से भर जाती है तब लगभग २५ मील लम्बी तथा ८ मील चौड़ी व एक से तीन फुट तक गहरी होती है। राजपूताना में बांध बनाकर अनेक कृत्रिम झीलें बनाई गई हैं जिनमें सबसे बड़ी झील जयसमुद्र (ढेबर) उदयपुर राज्य में है। इसकी लम्बाई नौ मील और चौड़ाई पांच मील के लगभग है। संसार भर की बनावटी झीलों में यह सबसे बड़ी मानी जाती है। इसके सिवाय उदयपुर में राजसमंद, उदयसागर, और पीछोला नामक झीलें हैं। अजमेर में आनासागर, फाईसागर, और पुष्कर झीलें हैं। जोधपुर में बालसमंद, सरदारसमंद, भरतपुर में बांधबरैठा, तथा अलवर में राजसमंद नामक झीलें हैं। राजस्थान, जोधपुर तथा जयपुर में कई नये बांध बनाये जारहे हैं।

जलवायु

राजपूताने का जलवायु शुष्क है। रेगिस्तान का जलवायु रोग के

तमनगढ़ (करौली) से प्राप्त शिलालेख

[कापीराइट—डि० ऑफ आर्केलाजी]

कीटाणुओं का ज्यादा पनपने नहीं देता, इसलिये रेगिस्तान के आसपास का भाग स्वास्थ्यकर है तथा यहां बीमारियाँ और महामारियाँ नहीं फैलतीं। पीने का पानी भी बहुत गहराई से प्राप्त होता है इसलिए वह भी शुद्ध और स्वास्थ्यप्रद है। जलवायु के लिहाज से राजपूताना भारत का एक अच्छा हिस्सा माना जाता है। पश्चिमी भाग में सर्दी के मौसम में अधिक ठण्ड और गर्मी में अधिक गर्मी पड़ती है और लू भी खूब चला करती है। परन्तु अजमेर का मौसम बारहों महीने अच्छा रहता है और पहाड़ियों से घिरा होने के कारण यहां लू भी नहीं चलती। कहावत प्रचलित है: 'सीयाला खाटू भला ऊंदाला अजमेर, सदा सुहावन मेड़ता सावन बीकानेर।' रेगिस्तान में गर्मियों के दिन जितने गर्म होते हैं रातें उतनी ही ठण्डी भी होती हैं क्योंकि रेत जल्दी गर्म होती है तो ठण्डी भी बहुत जल्दी हो जाती है। राजपूताना में वर्षा की मौसमी हवाओं को रोकने वाली कोई ऊंची

यम
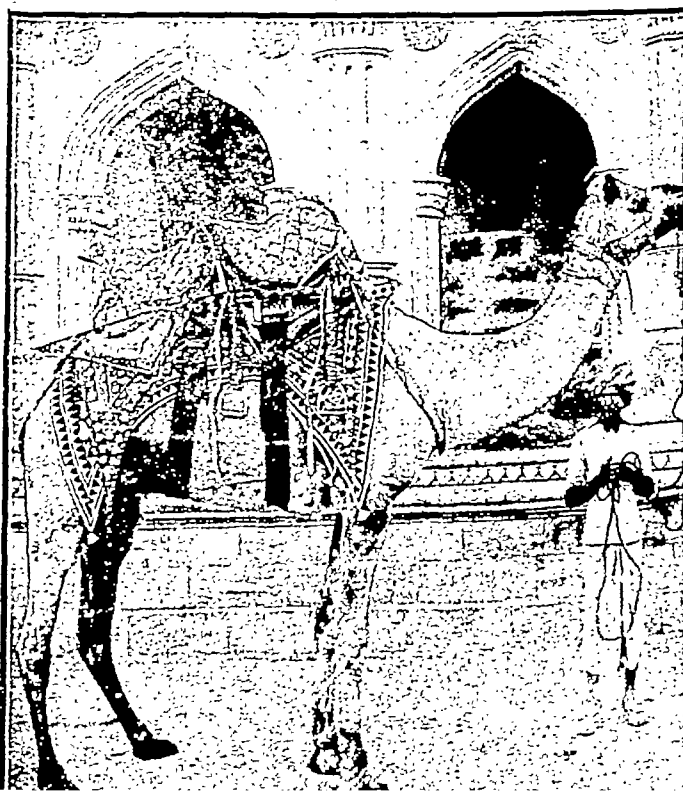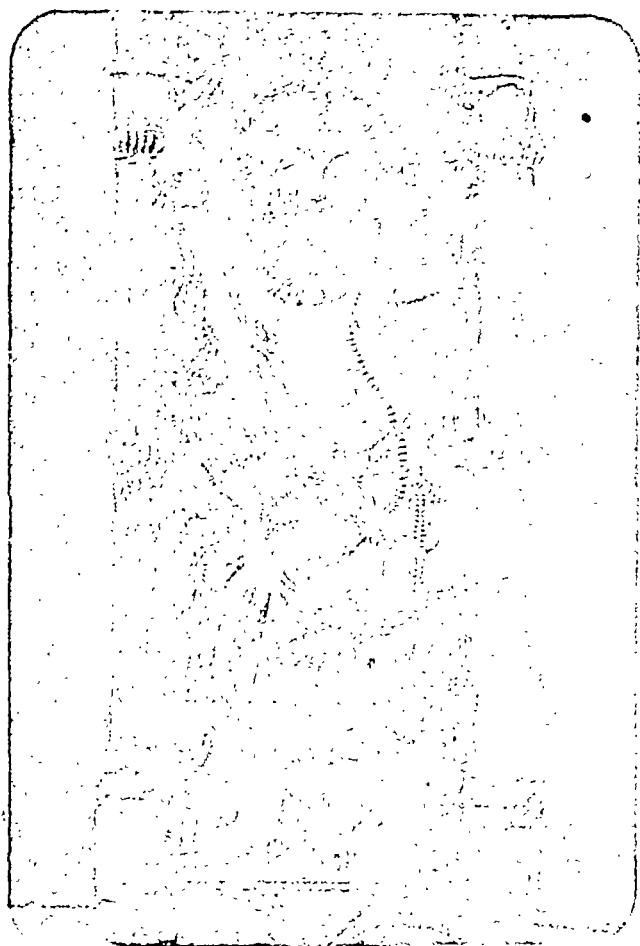
यह मूर्ति लंदन प्रदर्शिनी में भेजी गयी

[क्यूरेटर, राज० म्यू० अजमेर के सौजन्य से]

पर्वत श्रेणी नहीं है। ज्यों-ज्यों पश्चिम से पूर्व की तरफ जाते हैं या दक्षिण में बढ़ते हैं त्यों-त्यों वर्षा की औसत बढ़ती जाती है। जैसलमेर में छै इंच वर्षा होती है तो जयपुर में २४ इंच, धौलपुर में २६ इंच और डूंगरपुर, झालावाड़ में २०-३७ इंच की औसत है। सब से अधिक वर्षा आबू पहाड़ पर होती है, जिसकी औसत ५७ इंच है। आबू राजपूताने का शिमला कहलाता है। पश्चिमी राजपूताना में वर्षा बहुत कम होती है इससे वहां की जनता वर्षा का किस प्रकार स्वागत करती है वह इस पद्य से प्रकट है :

सो सांडिया सो करहला, पूत निपूती होय

मेहड़ला वूठा भला जे दुखियारण होय।

अर्थात् जिस स्त्री के सौ ऊंट, सौ ऊंटनियें और सारी सन्तान भी वर्षा से नष्ट हो चुकी हो वह भी सब प्रकार के कष्ट उठाते हुए वर्षा का स्वागत करती है। वर्षा की कमी तथा अनिश्चितता के कारण प्रान्त के कई भागों में अकाल मुँह बाये खड़ा ही रहता है। अकाल को मूर्तमान मान कर उसका निवास एक कहावत में इस प्रकार बताया गया है :

पग पूगल धड़ कोटड़े, उदरज बीकानेर।

भूलो चूको जोधपुर, ठावो जैसलमेर॥

अर्थात् अकाल कहता है कि मेरे पैर पूगल (बीकानेर राज्य के पश्चिमी प्रदेश) में, धड़ कोटड़े (जोधपुर राज्य का पश्चिमी भाग) में और उदर बीकानेर में है। कभी-कभी भूला चूका जोधपुर पहुंच जाता हूँ, परन्तु जैसलमेर में तो मेरा स्थान ही है।

पैदावार

आड़ावला पहाड़ के पश्चिमी भाग में वर्षा कम होने से वनस्पति अधिक नहीं पैदा होती। खेजड़ा, पीपल, बड़, नीम, फोग, करील, आम, दाड़म (अनार), रोहिड़ा, आदि के पेड़ अधिक होते हैं। आक भी बहुत होता है। राजपूताना के पूर्वी भाग में सब प्रकार की वनस्पति पाई जाती है जिनमें शीशम, बबूल, पलास, धव (धाउ) आदि के वृक्ष मुख्य हैं। पहाड़ी इलाकों में हरे-हरे जंगलों में केवड़े के सघन वृक्ष मिलते हैं। आबू पर्वत पर तो वनस्पति हिमालय की तराई का-सा रूप दिखलाती है।
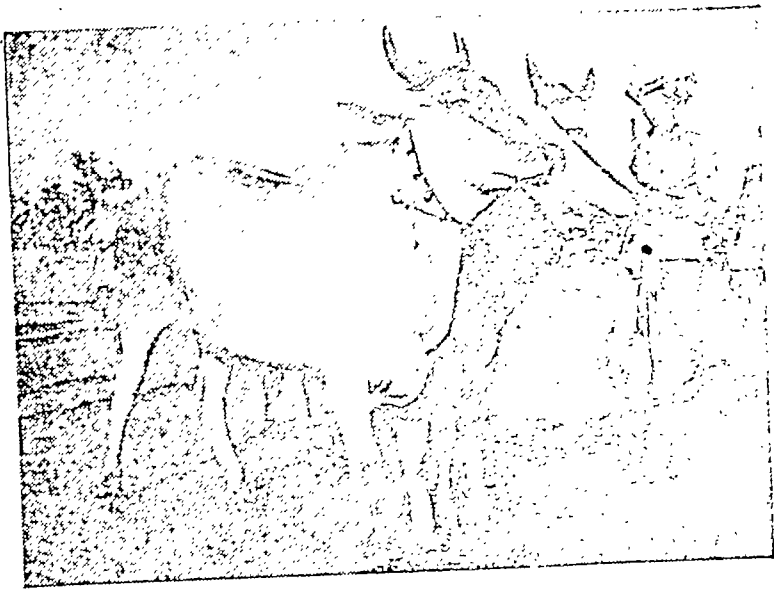
गाडूल्या लोहार

राजपूताना के पहाड़ों में वन पक्षियां भी बहुत तरह की पाई जाती हैं। वनों में शहद बहुत मिलता है। मेवाड़ का कत्था बाजार में कानपुरी कत्थे के नाम से बिकता है। यह खैर नामक वृक्ष की छाल से तैयार किया जाता है।

आड़ावला पहाड़ के पश्चिमी भागों में, सिवाय कुछ विशेष स्थानों के, सब जगह ही एक फसल खरीफ (सियालू) की होती है। रबी (उनालू) फसल भी कुछ स्थानों में कुए, तालाब या नहरों की सिंचाई से होती है। इस भाग में पानी ७५ फुट की गहराई पर मिलता है इसलिए कृषि में इसकी सिंचाई से लाभ नहीं हो सकता। फल यह होता है कि लोग खरीफ की फसल और वर्षा पर ही निर्भर रहते हैं।

राजपूताना का पूर्वी भाग उपजाऊ है और पानी की बहुतायत होने से उसमें दो फसलें होती हैं। नदी, नाले, तालाब, बान्ध अधिक हैं। दक्षिणी राजपूताना के भीलों में खेती करने का एक तरीका है जिसे वालर या वल्ला कहते हैं। ये लोग जंगल के वृक्षों तथा झाड़ियों को काटकर मैदान साफ करते हैं और उन्हीं की राख का खाद बनाकर खेती करते हैं। इससे राजपूताना के वन-धन की बहुत हानि हुई है जिसका प्रभाव वर्षा पर भी पड़ा है।

मुख्य पैदावार गेहूँ, जौ, मक्की, ज्वार, बाजरा, मूँग, मोंठ, चना, गवार, चावल, तिल अलसी, सरसों, जीरा, रूई, तम्बाकू और अफीम हैं।

खानें

राजपूताने में चांदी, तांबा, लोहा, जस्ता, सीसा, अभ्रक और कोयले आदि की खानें है। सिवाय लोहे व अभ्रक के अन्य धातुएं अब नहीं निकाली जातीं क्योंकि मिट्टी में इनकी मात्रा कम होने से निकालने का खर्च अधिक पड़ता है। चांदी व जस्ते की खान उदयपुर राज्य में, तांबा जयपुर राज्य के ठिकाने खेतड़ी में, लोहा उदयपुर, अलवर व जयपुर में, सीसा अजमेर में, कोयला बीकानेर के पलाना स्थान में, अभ्रक अजमेर-मेरवाड़ा तथा किशनगढ़ में, और संगमरमर जोधपुर के मकराना गाँव में पाया जाता है। उदयपुर तथा अजमेर-मेरवाड़ा में अभी पन्ने की खानें निकली हैं जो शायद भारत में सबसे पहली हैं। इसके सिवाय बाड़मेर में मुल्तानी मिट्टी की खानें हैं। इमारती पत्थर व छत पाटने की पट्टियों की खानें कई राज्यों में हैं।

खारोल—नमक बनाने वाले
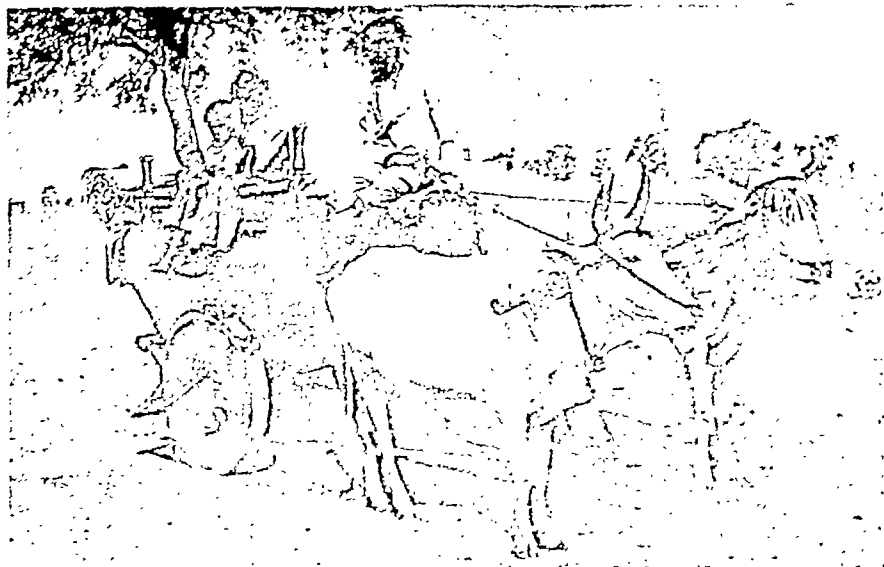
राजपूताना की सबसे महत्वपूर्ण पैदावार नमक है। सांभर झील के अलावा डीडवाणा, पचभदरा, लूणकरणसर, कोटड़ा, आदि स्थानों में भी नमक निकलता है। सांभर झील में प्रतिवर्ष लगभग डेढ़ करोड़ मन नमक निकलता है। झील के पानी को क्यारियों में भरकर सुखा दिया जाता है और जमा हुआ नमक खोद कर निकाल लिया जाता है। नमक के सारे केन्द्र भारत सरकार के नियन्त्रण में हैं। सांभर झील के अधिकार के एवज में भारत सरकार जोधपुर को प्रतिवर्ष सवा चार लाख रुपये तथा चौदह हजार मन नमक और जयपुर को पौने तीन लाख रुपये तथा सात हजार मन नमक देती है। प्राचीन काल में खारोल कहलाने वाले लोग सांभर झील में से नमक निकालते और बनजारे उसे बैलों पर लाद लाद कर देश विदेश को ले जाते थे।

पशु

शेर, चीता, बघेरा (अधबेसरा), हिरण, सांभर, रीछ, रोझ (नील गाय) जरख (लकड़बघा), सूअर, लंगूर, आदि पशु आड़ावला पहाड़ में तथा मेवाड़, बूंदी, कोटा के जंगलों में पाये जाते हैं। घरेलू पशुओं में ऊंट, घोड़ा, गाय, भैंस, बकरी, बैल, और गदहा हैं। घोड़े जोधपुर के, बैल नागोर के और ऊँट जैसलमेर व बीकानेर के अच्छे गिने जाते हैं। राजपूताना के पहाड़ों में भेड़-बकरियां बहुत चराई जाती हैं।

प्राचीन-मन्दिर--कोटा

चित्तौड़गढ़

[कापीराइट—डिपार्टमेन्ट आफ आर्केलाजी]

इतिहास की रूपरेखा

अंग्रेजों के शासन से पहले राजपूताना कभी एक राजनैतिक इकाई के रूप में नहीं रहा। इसका यह नाम भी अंग्रेजों का दिया हुआ है। यह नाम सम्भवतः इसे राजपूतों का निवास स्थान मानकर अथवा राजपूतों की महत्ता को मानकर दिया गया है।

इस प्रांत के विभिन्न भाग विभिन्न कालों में विभिन्न नामों से प्रसिद्ध थे। महाभारत काल में बीकानेर तथा जोधपुर का उत्तरी भाग जांगल देश कहलाता था जिसकी राजधानी अहिछत्रपुर (वर्तमान नागोर) थी। यही भाग बाद में सपादलक्ष (सवालक) कहलाया जिसमें मेवाड़ का पूर्वी हिस्सा भी शामिल था और जिसकी राजधानी शांकभरी (सांभर) थी। जोधपुर अपनी रेतीली भूमि के कारण, मरुदेश कहलाता था जिसमें वर्तमान जोधपुर राज्य के पश्चिमी परगने थे। जोधपुर राज्य का दक्षिणी तथा कुछ पश्चिमी भाग वल्ल देश कहलाता था। जोधपुर राज्य के मालानी तथा उसके आसपास के परगने पड़िहारों के राज्यकाल में त्रवणी कहलाते थे। गूजरों के समय में जोधपुर राज्य गुर्जरत्रा या गुर्जर देश (गुजरात) के नाम से प्रसिद्ध था। सिरोही राज्य तथा जोधपुर का दक्षिण-पूर्वी हिस्सा व दांता तथा पालनपुर राज्य कभी अर्बुद देश कहलाता था और यह प्राचीन मरु देश का एक अंश था। इसकी राजधानी चन्द्रावती आबू पहाड़ की तलहटी में थी। जैसलमेर राज्य माड देश के नाम से प्रसिद्ध था। महाभारत काल में अलवर राज्य का उत्तरी भाग कुरु देश में, दक्षिणी तथा पश्चिमी भाग मत्स्य देश में और पूर्वी भाग शूरसेन देश में थे। भरतपुर, धौलपुर, तथा करौली राज्य शूरसेन देश के अन्तर्गत थे जिसकी राजधानी मथुरा थी। वहां की भाषा शौरसेनी कहलाती थी। जयपुर राज्य का उत्तरी भाग मत्स्य देश में मिला था जिसकी राजधानी विराट थी जो अब जयपुर राज्य में बैराट नामक कस्बा है। यहाँ मौर्यवंशी सम्राट अशोक के शिलालेख मिले हैं। जयपुर राज्य का दक्षिणी भाग सपादलक्ष में गिना जाता था। उदयपुर राज्य शिवि नामसे प्रसिद्ध था जिसकी राजधानी मध्यमिका नामक नगरी थी। यहां पर ई० सन् पूर्व तीसरी शताब्दी के आसपास के तांबे के सिक्के मिले हैं।
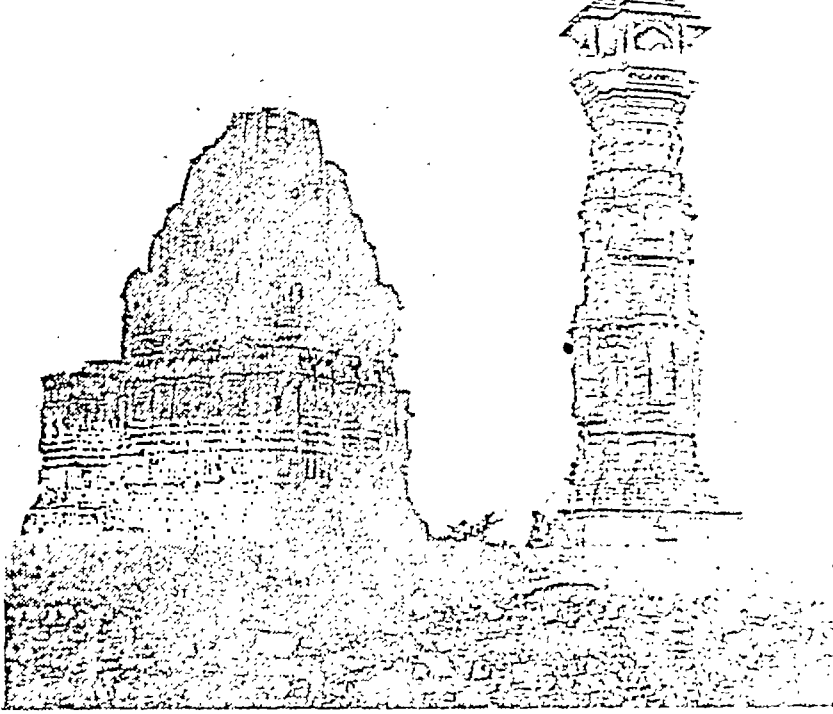
जैन कीर्ति स्तम्भ—चित्तौड़गढ़

नृत्य-मंडली—सीकर म्यूजियम (जयपुर)

बाद में मेरों का राज्य होने के कारण इसका नाम मेदपाट या मेवाड़ पड़ा। कभी यह देश प्राग्वाट भी कहलाता था। पोरवाल वैश्य भी अपने को प्राग्वाट महाजन कहते हैं। सम्भव है उनका यह नाम भी प्राग्वाट देश से ही प्रसिद्ध हुआ हो। डूंगरपुर और बांसवाड़ा का प्राचीन नाम वागड़ था जिसको कई लोग अभी तक नहीं भूले हैं। प्रतापगढ़, कोटा, झालावाड़, टोंक, आदि मालव देश के अन्तर्गत थे।

वर्तमान राजपूताना रामायण काल में समुद्र से ढका हुआ कहा जाता है। भूगर्भवेत्ता भी इस कथन से सहमत हैं। अब तक यहां पर सीप, शंख, कौड़ी, आदि सामुद्रिक पदार्थ मिलते हैं। उनके विचार से किसी आकस्मिक भूकम्प के कारण यहां इतना परिवर्तन आया कि समुद्र पीछे हट गया और चारों ओर रेत ही रेत निकल आई। उसी समय यह देश मरुकांतार भी कहलाता था। रामायण की कथा के अनुसार भगवान् रामचन्द्र ने सागर को डराने के लिये जो अमोघ बाण खींचा था उसे इधर ही फेंका, जिसके गिरने से समुद्र सूखकर रेतीला प्रदेश हो गया। महाभारत के अनुसार राजपूताने का जांगल देश कुरु राज्य के अन्तर्गत तथा मत्स्य देश एक मित्र था। महाभारत काल के बाद के राजपूताने के इतिहास के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। उसके बाद हम मौर्यकाल में फिर राजपूताने के कुछ हिस्सों से परिचित होते हैं। जयपुर राज्य के बैराट नगर में सम्राट अशोक के वि० सं० पूर्व १९३ (२५० वर्ष ई० पूर्व) के दो शिलालेख मिले हैं। अशोक ने अपने राज्यकाल में केवल कलिंग को जीता था; अतः बैराट चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भी अवश्य मौर्य राज्य के अन्तर्गत रहा होगा।

मौर्यों का चित्तौड़ पर भी बहुत समय तक राज्य रहा। यह प्रसिद्ध है कि मेवाड़ के बापा रावल (राजा कालभोज) ने वि० सं० ७९० (७३३ ई०) के लगभग राजा मान मौर्य से चित्तौड़गढ़ लिया था। कोटा के निकट कणसवा गांव के शिवालय में मिले एक शिलालेख के अनुसार वहां वि० सं० ७९५ (७३८ ई०) में मौर्य राजा धवल का राज्य था। इससे यही विदित होता है कि राजपूताने में मौर्यों का राज्य काफी समय तक रहा था।

वि० सं० पूर्व की तीसरी शताब्दी के बहुत से तांबे के सिक्के जयपुर राज्यमें,
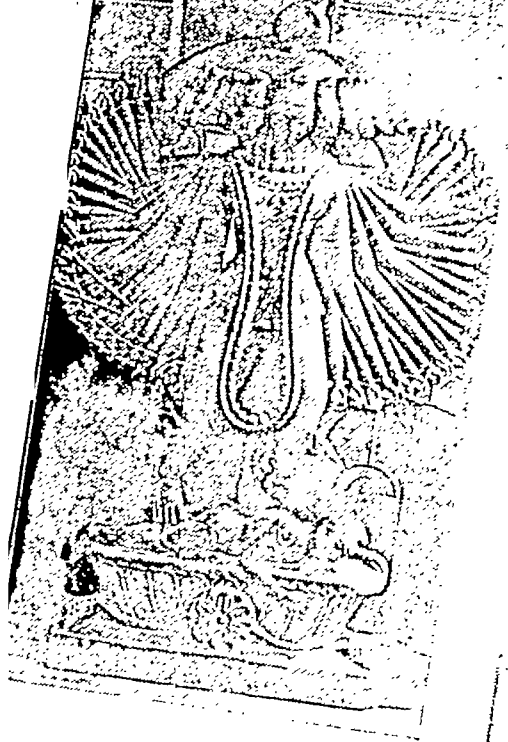
आउआ (जोधपुर) में प्राप्त देवी की मूर्ति
[क्यूरेटर, राजपूताना म्यूजियम, अजमेर के सौजन्य से]

नवग्रह का मन्दिर किशनगढ़

उणियारा ठिकाने के प्राचीन नगर के खण्डहरों में मिले हैं जिन पर "मालवन्तं जय" (मालव जाति की विजय) लिखा है। कई सिक्कों से ज्ञात होता है कि उन पर "जय मालवगणस्य" लिखा है। इससे विदित होता है कि यहां मालवों का गण राज्य था। ईसा के बाद २०० वर्ष के आस-पास जब यूनानी लोग उत्तर-पश्चिम से भारत आये तब उनका अधिकार भी यहां रहा और उन लोगों ने जो प्रदेश जीते थे उनमें मध्यमिका नाम की पुरानी नगरी का वर्णन भी मिलता है। यह नगरी चित्तौड़ के पास थी। उसके खण्डहर चित्तौड़ के किले से सात मील उत्तर में स्थित हैं। यूनानी नरेशों में से दो राजाओं (एपोलोडाटस और मिनेण्डर) के कई सिक्के भी मेवाड़ में मिले हैं। ईसा की दूसरी शताब्दी से चौथी शताब्दी तक शक लोगों का राजपूताना के दक्षिण-पश्चिम भागों पर अधिकार रहा और गिरनार में प्राप्त शक सम्वत् ७२ (वि० सं० २०७८, सन् १५० ई०) के एक लेख से शक नरेश रुद्रदामा का राज्य मरु (मारवाड़) और साबरमती के आस-पास होना प्रकट होता है। चौथी शताब्दी के अन्तिम भाग से लेकर छठी शताब्दी के शुरू में हर्षवर्धन ने थाणेश्वर और कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया और राजपूताने का बहुत-सा हिस्सा अपने राज्य में मिला लिया।

वि० सम्वत् ६६६ (६६६ ई०) के करीब जब चीनी यात्री हुएनत्सांग भारत में भ्रमण करता हुआ राजपूताना में आया तब उसने को इसे चार भागों में बंटा हुआ पाया था। अर्थात् पहला गुर्जर (जिसमें जोधपुर, बीकानेर और शेखावटी का कुछ भाग था), दूसरा वधारि अर्थात् बागड़ जिसमें दक्षिणी भाग और बीच का कुछ हिस्सा था, तीसरा वैराट (जिसमें जयपुर, अलवर, और टोंक का कुछ हिस्सा था) और चौथा मथुरा (जिसमें आधुनिक भरतपुर, धौलपुर और करौली के वर्तमान राज्य थे)। ७वीं से ११वीं शताब्दी तक राजपूत जाति के कई वंश प्रसिद्धि में आये, जिन्होंने अपने बाहुबल से यहां के आदि निवासियों व विदेशियों को हटा कर अपने जुदे जुदे राज्य कायम किये। ये गहलोत (वि०सं० ६२५, सन् ५६८ ई०), पड़िहार, चौहान और भाटी (७वीं शताब्दी), परमार, और सोलंकी (१०वीं शताब्दी), नाग, यौधेय (जोहिया), तंवर, दहिया, डोडिया, गौड़, यादव, कछवाहा और राठौड़
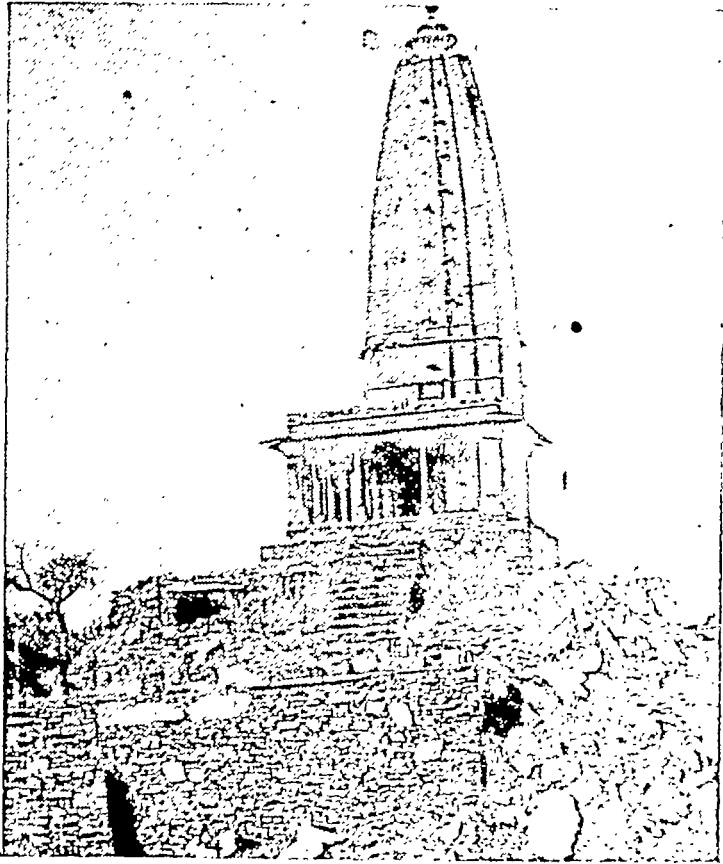
हर्सनाथ का मंदिर— सीकर (जयपुर)

आदि के नाम से प्रसिद्ध हुए। १०वीं शताब्दी में मुसलमानों के आक्रमण के समय इन्हीं राजपूत राजवंशों के राज्य राजपूताना में फैले हुए थे। चौहानों का राज्य तो दिल्ली तक फैला हुआ था।

तेरहवीं शताब्दी में सम्पूर्ण राजपूताना पर राजपूतों का राज्य था। भारत में इससे बहुत पहले मुसलमानों का आगमन हो चुका था। सिन्ध से मिले होने के कारण कभी-कभी यहां मुसलमानों के हमले भी हो जाते थे लेकिन फिर भी यहां पर उनका आधिपत्य न हो पाया। यहां के राजपूत उन्हें लड़-झगड़ कर भगा देते थे। वि० सं० १२५० (११९३ ई०) में पृथ्वीराज चौहान ने शहाबुद्दीन गौरी से हार खाई। यहीं से राजपूताना तथा एक प्रकार से भारत के इतिहास में परिवर्तन प्रारम्भ हो गया। शहाबुद्दीन ने पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्दराज से अपनी अधीनता स्वीकार करा कर उसे अजमेर की गद्दी पर बैठाया। पर पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने गोविन्दराज से अजमेर छीन लिया। शहाबुद्दीन के बाद उसके गुलाम कुतुबुद्दीन ने दिल्ली को अपने अधिकार में कर लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया। बाद में वि० सं० १२५२ (११९५ ई०) में कुतुबुद्दीन ने हरिराज को हराया और अजमेर पर अपना अधिकार जमा कर वहां मुसलमान हाकिम नियुक्त किया। उस समय अजमेर का राज्य काफी फैला हुआ था। अल्तमश ने जालोर, रणथंभोर, मडोर, सवालक और सांभर को विजय किया और वहां के राजाओं से अपनी आधीनता स्वीकार करा ली। उसने मेवाड़ पर चढ़ाई भी की लेकिन वहां उसकी दाल नहीं गली।

अलाउद्दीन खिलजी ने वि० सं० १३५७ (१३०० ई०) में रणथम्भोर के राजा हम्मीर चौहान को हराकर किला अपने अधिकार में कर लिया। उसके तीन ही वर्ष बाद उसने चित्तौड़ से एक विकट युद्ध लड़कर विजय प्राप्त की और अपने पुत्र ख़िज़र खाँ को वहाँ का अधिपति बनाया। यह वही युद्ध है जिसमें राणा लक्ष्मणसेन मारे गये। राजपूतों ने जौहर व्रत किया तथा पद्मिनी हजारों राजपूत ललनाओं के साथ चिता में कूदकर भस्म हो गयी। परन्तु यह आधिपत्य बहुत ही कम वर्षों तक रहा और वि० सं० १३३२ (१३७५ ई०) के लगभग महाराणा हम्मीर ने चित्तौड़गढ़ वापस जीत लिया। वि० सं० १३६५

तोरण का भाग—मंडोर (जोधपुर)

(१३०८ ई०) में अलाउद्दीन ने सिवाने का किला (जोधपुर राज्य), और वि० सं० १३६८ (१३११ ई०) में जालोर जीत लिया। तुगलकों के समय में मुसल-मानी राज्य कमज़ोर हो गया। यह देख राजपूत राजाओं ने अपने अपने राज्य वापस जीत लिये। मेवाड़ के महाराणा क्षेत्रसिंह, कुम्भा, रायमल और सांगा ने मांडू (मालवा) के सुलतान से, जो पहले दिल्ली के बादशाह के हाकिम थे, कई लड़ाईयाँ लड़ीं और उन्हें हराया। गुजरात के सुल्तानों तथा नागोर (मारवाड़) के सुल्तानों से भी कई लड़ाईयाँ लड़ी गयीं।

इसके बाद लगभग दो सौ वर्ष तक राजपूत राजाओं के राज्यों पर कोई खास आक्रमण नहीं हुए। वि० सं० १५८० में महाराणा सांगा ने बाबर से मोर्चा लिया लेकिन वह खानवा के मैदान में हार गये। बाबर के बाद शेरशाह ने फिर राज-पूताना पर हमला किया। जोधपुर के राजा मालदेव राठोड़ ने उने कई बा- लड़ाईयाँ लड़नी पड़ीं। अंत में किसी प्रकार शेरशाह की विजय हुई। परन्तु यह कुछ ही समय की थी। शेरशाह ने चित्तौड़ पर भी आक्रमण किया लेकिन

वह असफल रहा। फिर भी मेवाड़ को विजय करने में कुछ सफलता मिली।

अकबर ने पिछले राजाओं की विजय व पराजय से एक अमूल्य पाठ पढ़ा। उसे यह पूर्ण विश्वास हो गया कि जब तक वह इस देश को अपना ही देश न समझेगा और राजपूतों को अपना सहायक न बना लेगा तब तक एक सुदृढ़ राज्य स्थापित न कर सकेगा। राजपूताना में उस समय कुल ग्यारह राज्य—उदयपुर, डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़, जोधपुर, बीकानेर, आम्बेर, बून्दी, सिरोही, करौली और जैसलमेर—थे। इनमें मुख्य उदयपुर और जोधपुर के राज्य थे। आम्बेर (जयपुर) का राज्य इस समय कोई विशेष शक्तिशाली नहीं था। यहां के राजा ने सर्वप्रथम अकबर की अधीनता स्वीकार की। इसके बाद अन्य राजा भी अकबर के अधीन हो गये। एक मेवाड़ के महाराणा ही बचे जिन्होंने बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। इस कारण उसने मेवाड़ पर वि० सं० १६२४ (१५६७ ई०) में चढ़ाई की और चित्तौड़ का किला जीत लिया। लेकिन वहाँ के महाराणा उदयसिंह ने बादशाह की अधीनता स्वीकार न की। उदयसिंह की मृत्यु के बाद प्रतापसिंह मेवाड़ का स्वामी हुआ। उसके साथ भी युद्ध चलता रहा परन्तु अकबर अपनी अधीनता स्वीकार न करा सका। सन् १५७६ ई० में हल्दीघाटी पर घमासान युद्ध हुआ। अन्त में यद्यपि महाराणा हार गया लेकिन उसकी वीरता ने उसे अमर कर दिया। सन् १५७७ ई० में महाराणा परलोक सिधार गया। चित्तौड़ लेने के बाद अकबर ने रणथम्भोर भी ले लिया और राजपूताना को अपने साम्राज्य का एक सूबा बना दिया यद्यपि वह उसका पूर्ण स्वामी न हुआ था।

सन् १६१४ ई० में मेवाड़ के राणा अमरसिंह ने अकबर के पुत्र जहाँगीर के अधीन रहने से इन्कार कर दिया। इस पर राजकुमार खुर्रम ने राणा और उसके पुत्र को अधीन होने पर विवश किया; परन्तु बादशाह ने राणा से न कोई डोला माँगा, और न मेवाड़ के शासन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप ही किया। मेवाड़ की स्वतंत्रता का अंत यहीं पर हो जाता है।

औरंगजेब ने अकबर की नीति को एक दम उलट दिया। जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह के काबुल में देहावसान (१६७८ ई०) हो जाने पर
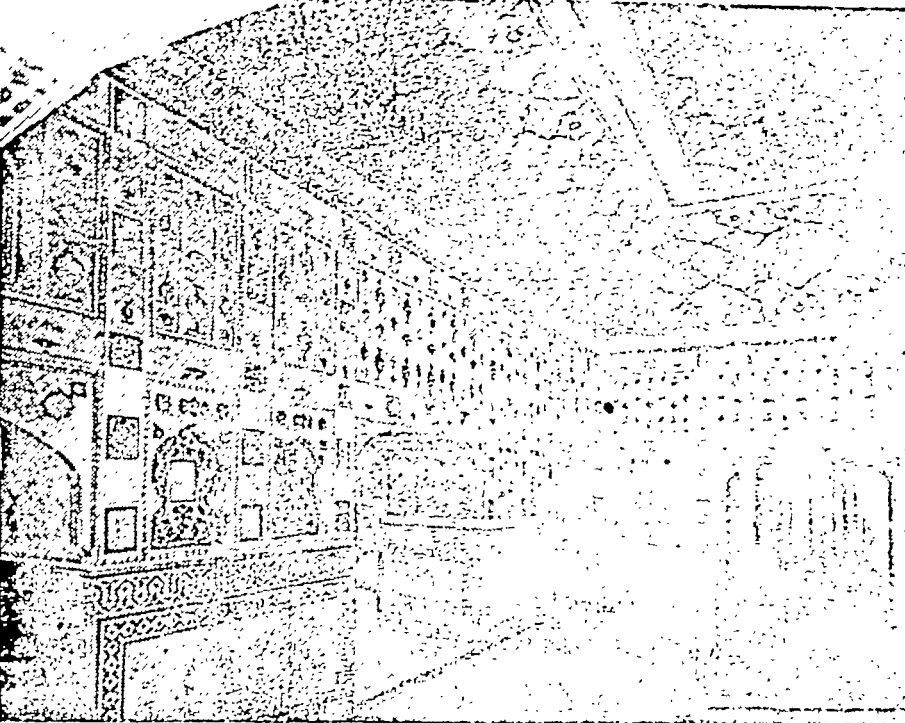
आम्बेर का भवन
[कापीराइट—डि० आफ आर्केलाजी]

ोरण—जगत शिरोमणि का मन्दिर
आम्बेर (जयपुर)

औरंगजेब ने जोधपुर को अपने अधिकार में कर लिया। और जसवन्तसिंह के नाबालिग पुत्र अजीतसिंह को हिरासत में रखा. परन्तु राठौर वीर दुर्गादास उसे औरंगजेब के चंगुल से छुड़ा लाया। उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने मारवाड़ का पक्ष लिया। जयपुर का राजा मुगलों के साथ रहा। सम्पूर्ण राजपूताना औरंगजेब से बिगड़ गया था। अन्त में बादशाह ने उदयपुर के राणा के साथ सन्धि कर ली, और जज़िया उठा लेने का वचन दिया। औरंगजेब की मृत्यु के बाद महाराजा अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार कर लिया।

औरङ्गजेब की मृत्यु के बाद राजपूताना के सभी राजा स्वतन्त्र होगये। वि०सं० १८३१ में शाहआलम (दूसरे) की कृपा से अलवर का नया राज्य स्थापित हुआ। इस अर्से में मरहठों का बल बढ़ने लगा और उन्होंने राजपूताना पर भी अपना अधिकार और प्रभुत्व स्थापित किया। उन्होंने राजपूताना के राजाओं से खिराज वसूल किया और प्रजा को भी खूब लूटा। अन्त में उदयपुर, जोधपुर तथा जयपुर के राजाओं ने मिलकर मराठों को राजपूताना से निकालने की योजना बनाई। इस कार्य में और भी कई राज्य शामिल हुए। जयपुर से ४३ मील पूर्व गांव तुंगा में वि० सं० १८४४ की प्रथम श्रावण सुदी १३ (सन् १७८७ ई० ता० २७ जुलाई) को सिंधिया व राजपूतों के बीच घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में सिंधिया की हार हुई। परन्तु यह राजपूत संगठन अधिक समय तक कायम न रह सका, क्योंकि राठौर व कछवाहों में फूट पड़ गई।

लार्ड वेलेजली के समय में कर्नल लेक ने सिंधिया की शक्ति को निर्बल कर दिया। वि० सं० १८६१ (१८०४ ई०) में जसवन्तराव होलकर ने राजपूताना में पहुंचकर महाराजा जगतसिंह जयपुर नरेश को जा दबाया। परन्तु अंग्रेजी सेना आ पहुँची और उसने मराठों को कोटा से आगे खदेड़ दिया। बाद में लार्ड लेक ने होल्कर और भरतपुर के राजा दोनों को सन् १८०४ ई० में डीग की लड़ाई में परास्त कर दिया। डीग तथा अन्य किले अंग्रेज़ों ने ले लिए। इसके बाद भरतपुर पर आक्रमण किया गया। भरतपुर के किले को जीतने के चार बार असफल प्रयत्न किये गये। अन्त में किले का घेरा डाल दिया गया। तीन मास के घेरे के बाद राजा ने सन्धि कर ली। अन्त में होलकर ने भी
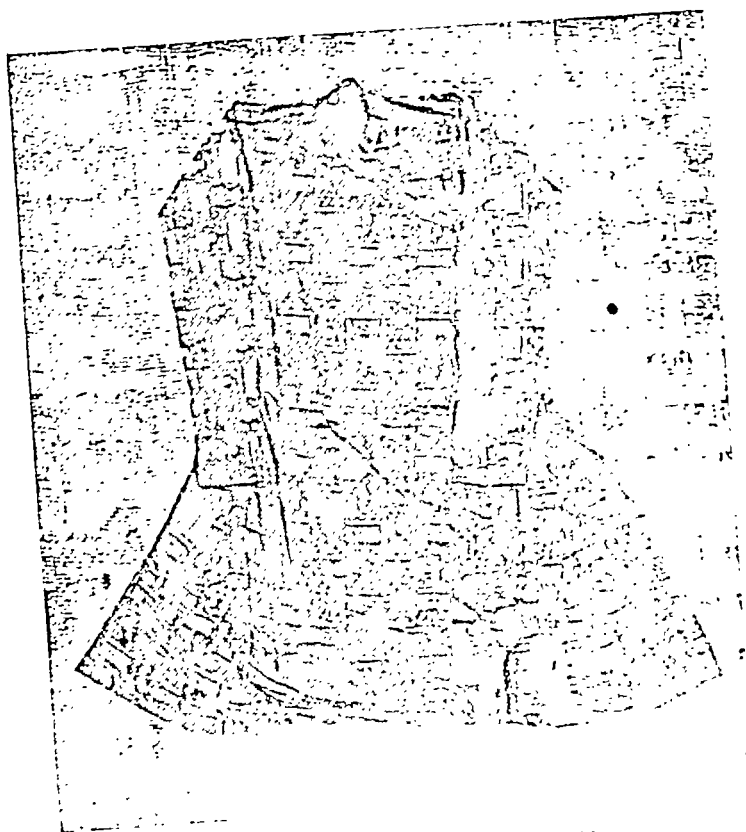
बीकानेर के राजा को औरंगजेब की भेंट

अंग्रेजों से सन्धि कर ली। इस पर राजपूताना का जितना हिस्सा उसने दबा लिया था वह वहां के राजाओं को वापिस दिलवा दिया गया।

जब उदयपुर की राजकुमारी कृष्णकुमारी के विवाह के लिए जयपुर तथा जोधपुर के बीच लड़ाई ठन गई तब वहाँ के नरेशों ने मराठों को अपनी-अपनी सहायतार्थ बुलवाया। पिंडारी नेता नवाब आदि अमीर खां की हिकमत से महाराणा को कृष्णकुमारी को जहर का प्याला पिलाना पड़ा, तब जाकर वहीं शान्ति हुई।

सिंधिया ने वि०सं० १८७५ की श्रावण बदी ११(१८१८ ई० ता० २८ जुलाई) को अजमेर अंग्रेजों को सौंप दिया। इसके बाद धीरे-धीरे राजपूताना की सब रियासतों की सन्धियां अंग्रेजों से हो गईं।

अलवर व भारतपुर तो सं० १८६० (वि० १८०३ ई०) में अंग्रेजों की आधीनता में आ गये थे। करौली रियासत के साथ भी नवम्बर १८०३ ई० में सन्धि हो गई। कोटा के साथ १८१७ ई० में और बाकी सब रियासतों के साथ १८१८ ई० में सन्धियां हुईं। सिरोही के साथ १८२३ ई० में सन्धि हुई। झालावाड़ (झालरापाटन) की रियासत १८३८ ई० तक कायम नहीं हुई थी इसलिए इसके साथ बाद में सन्धि हुई। इस प्रकार सन्धियों के द्वारा राजपूताना में अंग्रेजों का प्रवेश हो गया और देश में शान्ति हो गई। १८१८ ई० में अजमेर-मेरवाड़ा का इलाका राजपूताने के मध्य में अंग्रेजों का केन्द्र बना।

इसके बाद अंग्रेज सरकार ने धीरे-धीरे राजपूताना के राजाओं को निर्बल बनाने की नीति अखतियार की तथा उन्हें विभाजित रखकर भारत में अपना साम्राज्य मज़बूत करने का साधन बनाया। आपसी लड़ाई-झगड़ों से छुटकारा पाकर राजा लोग भी आराम-तलब हो गये और उन्हें अपनी प्रजा की भलाई का पहले जैसा ध्यान न रहा। राजाओं के दीवानों तथा कर्मचारियों का बोलबाला होने लगा। कहने को तो राजा लोग स्वतन्त्र माने जाते थे। पर अंग्रेज़ सरकार का इनपर पूरा अंकुश था। जो राजा सरकार का साथ देते उनके सब ऐबों को सहन कर लिया जाता पर जो राजा स्वतन्त्रता की भावना का कुछ भी परिचय देते उनके या तो अधिकार छीन लिये जाते या उन्हें गद्दी से उतार दिया जाता। गोदनशीनी के मामले में भी सरकार हस्तक्षेप करने लगी।
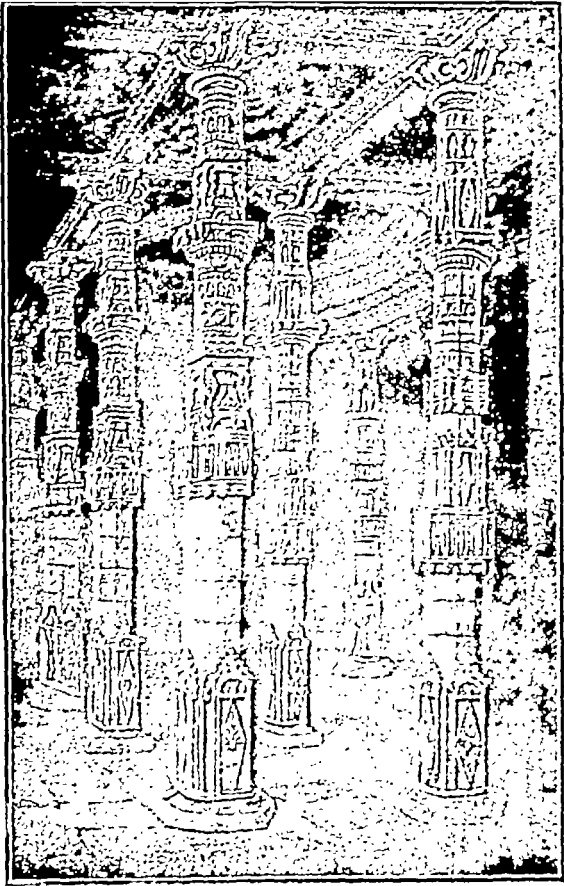
ढाई दिन का झोंपड़ा का भीतर का दृश्य-अजमेर

राजपूताना को कई रेज़िडेन्सियों में विभाजित करके हरेक पर एक पोलिटिकल एजन्ट नियुक्त कर दिया गया और अजमेर मेरवाड़ा का चीफ़ कमिश्नर इन सबके ऊपर गवर्नर जनरल का एजन्ट बनाया गया।

राजा लोगों का शासन निरंकुश हो गया उधर जागीरदारों की चढ़ बनी। राजपूताना में सामन्तशाही के इन प्रतीकों को अपनी अपनी जागीरों में कर वसूल करने तथा दण्ड देने के अधिकार थे। इस प्रकार रियासतों की प्रजा पर शासन तथा दमन का तिहरा बोझ हो गया। पहले जागीरदार, उनके ऊपर राजा तथा सबके ऊपर अंग्रेज़ सरकार। रियासतों में नागरिक स्वतन्त्रता नाम को भी न थी। इस कारण वहां न लोग शासन के विरुद्ध बोल सकते न लिख सकते थे। समाचार-पत्रों का भी इसी कारण विकास न हो पाया। अंग्रेज सरकार रियासतों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप जानबूझ कर नहीं करती थी। वह राजाओं से यही चाहती थी कि वे अपने यहां राजनैतिक जागृति का बीज न पनपने दें।

राजनैतिक जागृति

राजस्थान में राजनैतिक जागृति का सूत्रपात बंग-भंग के पश्चात् हुआ। जब देश में क्रान्तिकारी हलचलों ने जोर पकड़ा तो उससे राजस्थान भी अछूता नहीं रहा। राजस्थान में क्रान्तिकारी दल की शाखा संगठित हुई। स्वर्गीय अर्जुनलालजी सेठी ने, जो जयपुर के ही रहने वाले थे, राजस्थान के नवयुवकों में देशभक्ति और क्रान्ति की भावनाओं को जगाया। शाहपुरा के ठाकुर केसरी सिंह बारहट और उनके परिवार ने क्रान्तिकारी हलचलों में प्रमुख भाग लिया। उन्हें स्वयं आजन्म कारावास की सजा हुई और उनके वीर पुत्र प्रताप ब्रिटिश नौकरशाही की कैद में शहीद हुए। खरवा के राव गोपालसिंह और ब्यावर के सेठ दामोदरदास राठी ने भी राष्ट्रीय मुक्ति के इस यज्ञ में हाथ बंटाया। जिस समय विदेशी राज्य का आतंक चरम सीमा पर था, उस समय राजस्थान में स्वतन्त्रता की ज्योति को जगाने वाले और पतंगों की भांति अपने-आप को होम देने वाले यही लोग थे।

जब महात्मा गांधी देश के राजनैतिक क्षेत्र में आये और उन्होंने कांग्रेस की बागडोर अपने हाथ में सम्हाली, तो देश की आजादी की लड़ाई ने नया पथ

दुर्गादास राठौड़
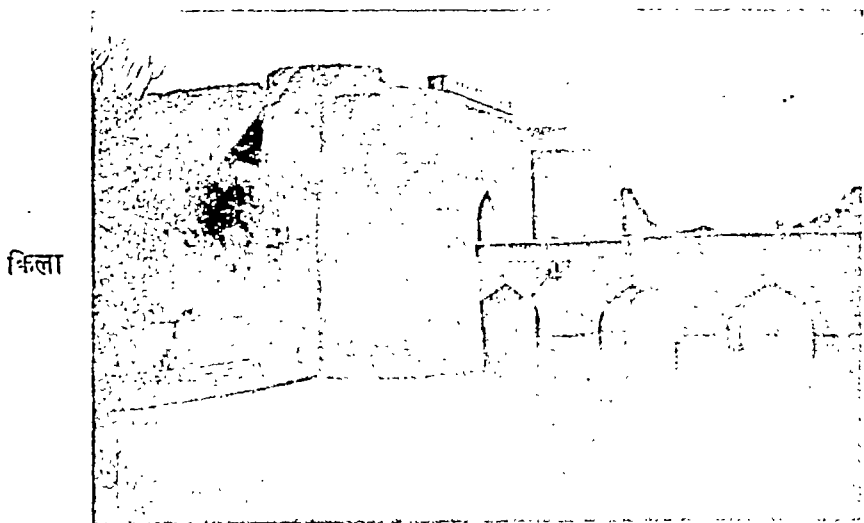
किला

ग्रहण किया। गांधीजी ने देश को खुले प्रतिरोध, सहयोग तथा सत्याग्रह का रास्ता दिखाया। राजस्थान का अधिकांश भाग राजाओं के आधीन था और उसमें सीधी लड़ाई लड़ना शक्य न था। कांग्रेस की रियासतों के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करने की नीति न थी। अतः अजमेर-मेरवाड़ा का छोटा-सा इलाका, जो अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत था, प्रान्त के स्वतन्त्रता आन्दोलन का केन्द्र बन गया। राजपूताना और मध्यभारत के देशी राज्य अजमेर-मेरवाड़ा की प्रान्तीय कांग्रेस से सम्बद्ध कर दिये गये। सन् १९२१ ई० के असहयोग आन्दोलन के जमाने में अजमेर-मेरवाड़ा ने खूब ख्याति प्राप्त की। उस समय हिन्दू और मुसलमान विदेशी राज्य के विरुद्ध दूध और पानी की तरह एक होकर उठ खड़े हुए थे। प्रिंस आफ वेल्स के आगमन पर अजमेर में अभूतपूर्व हड़ताल हुई। इसके बाद जब सन् १९३०-३२ ई० में देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन हुए, तो अजमेर-मेरवाड़ा ही प्रान्त की लड़ाई का मोर्चा बना। उसमें राजपूताना और मध्यभारत की रियासतों से अनेक सत्याग्रही जत्थे शामिल हुए और उन्होंने राष्ट्र के स्वाधीनता-यज्ञ में अपनी आहुतियाँ भेंट कीं।

राजस्थान की रियासतों में मध्ययुगी शासन प्रचलित था। राजाओं और जागीरदारों को मनमानी सत्ता और अधिकार प्राप्त थे। अनेक प्रकार से प्रजा का शोषण और उत्पीड़न होता था। इसके विरुद्ध पहली खुली बगावत मेवाड़ के बिजोलिया ठिकाने में हुई। यहां के किसान बैठ-बेगार और सैकड़ों किस्म की लाग बाग से त्रस्त थे। उन्होंने देशी राज्यों के आधुनिक इतिहास में पहली बार (१९१८ ई०) सामूहिक सत्याग्रह के अस्त्र का प्रयोग किया और लम्बे तथा उग्र दमन के बावजूद अन्त में अपने अभाव-अभियोग दूर करवाने में सफल हुए। बिजोलिया का यह किसान आन्दोलन श्री विजयसिंह पथिक के नेतृत्व में हुआ था।

बिजोलिया-आन्दोलन का राजस्थान-व्यापी असर हुआ और जगह-जगह लोग रियासती शोषण और अत्याचारों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। मेवाड़ के किसान इससे विशेष रूप से प्रभावित हुए। उनका गैर-कानूनी और बर्बर तरीकों से दमन किया गया। राजस्थान के लाखों भीलों में असन्तोष की आग भड़क उठी। राज्यों ने इस व्यापक जन-जागृति को दबाने के लिए फौजों और

भील

मशीनगनों का इस्तेमाल किया और सैकड़ों आदमियों को भून डाला। मेवाड़ और सिरोही रियासतों में ये हत्याकाण्ड हुए और सिरोही राज्य में दो गांवों को जलाकर राख कर दिया गया। बून्दी में भी किसानों ने मध्ययुगी शोषण के विरुद्ध सिर उठाया और राज्य ने स्त्रियों पर भालों और लाठियों से प्रहार करने में संकोच नहीं किया।

बाद में, सन् १६१६ ई० में, राजस्थान-सेवा संघ का केन्द्र वर्धा से अजमेर में आ गया तथा उसने राजस्थान के जन-आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। यहां से संघ के मुखपत्र 'राजस्थान केसरी' के बन्द किये जाने पर 'तरुण राजस्थान' निकाला गया जिसने राजस्थान की जनता के कष्टों को तथा उनकी समस्याओं को निर्भीकतापूर्वक देश के सामने रक्खा और नेताओं का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया।

राजस्थान की अलवर रियासत में सन् १६२५ई० में नीमूचाणा का हत्याकांड हुआ, जिसकी तुलना जलियांवाला हत्याकांड से की जा सकती है। रियासत ने नया बन्दोबस्त करवाया था और उसके फलस्वरूप लगान बढ़ा दिया था और राजपूत किसानों के बिस्वेदारी हक छीन लिये थे। इस पर लोगों में बेचैनी फैली, जिस पर रियासत ने उन्हें दबाने के लिए फौजें भेज दीं। फौजों ने गांव को घेर लिया और बिना किसी चेतावनी के चारों ओर से गोलियाँ चलाना शुरू कर दीं। दो घण्टे तक बन्दूकों से गोलियां चलाई गईं और ४२ मिनिट तक मशीनगन से फायर किये गये। फौजों ने गांव में आग लगा दी जिससे ३५० घर नष्ट हो गये और ७० मवेशी मर गये। इस हत्याकांड में लगभग १०० व्यक्ति मारे गये।

जयपुर राज्य के शेखावाटी और सीकरवाटी इलाकों में किसानों ने आर्थिक शोषण और उत्पीड़न के विरुद्ध आन्दोलन किया।

राजस्थान में राजनैतिक चेतना का प्रसार करने में चर्खा संघ और हरिजन-सेवक संघ जैसी रचनात्मक संस्थाओं का भी अप्रत्यक्ष रूप से काफी योग रहा है।

हरिपुरा कांग्रेस ने देशी राज्यों में स्वतन्त्रता आन्दोलन को नई गति दी। कांग्रेस ने रियासती जनता को सलाह दी कि उसे राजनैतिक अधिकार प्राप्त

करने के लिए अपने पांवों पर खड़ा होना चाहिए। उसके बाद अलग अलग रियासतों में प्रजामण्डल कायम किये गये। किन्तु प्रायः रियासतें राजनैतिक संस्थाओं का अस्तित्व सहन करने को उद्यत न थीं। अतः अनेक रियासतों में संगठन की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सत्याग्रह करना पड़ा। जयपुर में ऐसे सत्याग्रह का नेतृत्व कांग्रेस-कार्य समिति के सदस्य स्व० सेठ जमनालाल बजाज ने किया था। आखिर रियासतों को बड़े संघर्ष के बाद प्रजा मण्डलों का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ा। प्रजामंडलों को रियासती जनता का अधिकाधिक समर्थन मिलता गया और उनकी जड़ें जनता में गहरी घुसती गईं। रियासतों में उत्तरदायी शासन स्थापित करने का आन्दोलन इन प्रजामंडलों के नेतृत्व में जोर पकड़ गया। देशी राज्य लोक-परिषद् ने इन प्रजामण्डलों को एक सूत्र में रखा, जो कांग्रेस के साथ मिल जुल कर उसकी रीति-नीति पर काम करता था।

प्रजामंडल के आन्दोलन के सिलसिले में जैसलमेर, जोधपुर, अलवर, भरतपुर, कोटा, बूँदी, आदि रियासतों में जोरदार आन्दोलन हुए तथा दमन भी खूब हुआ। सैकड़ों व्यक्तियों को जेल में डाला गया तथा उन्हें यन्त्रणाएं दी गईं। कई जगह लाठी तथा गोली-कांड भी हुए। जोधपुर जेल के कष्टों के फलस्वरूप श्री बालमुकन्द बिस्सा की मृत्यु हुई। जैसलमेर जेल में श्री सागर-मल गोपा शहीद हुए। कहते हैं इन्हें मिट्टी का तेल डालकर जला दिया गया था। भरतपुर के सत्याग्रही श्री रमेश स्वामी के ऊपर पुलिस ने भरी लारी चलादी जिससे उनका प्राणान्त हो गया।

सन् १९४२ ई० में कांग्रेस ने भारत की स्वतन्त्रता का आखिरी संग्राम शुरू किया इस संग्राम में राजस्थान की कतिपय रियासतों की जनता ने प्रजामण्डलों के नेतृत्व में हिस्सा लिया। राजपूताना की मेवाड़, कोटा, आदि रियासतों का योग उल्लेखनीय रहा। रियासती शासकों ने लोगों को जेलों में बन्द किया, किन्तु स्वतन्त्रता की भावना दब नहीं सकी। जनता में राजनैतिक चेतना व्यापक हो गई।

सन् १९४७ ई० में अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद् का अधिवेशन उदयपुर में पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। अब तक परिषद् के अधिवेशन ब्रिटिश भारत में ही होते थे, अतः रियासत में होने वाला यह

पहला अधिवेशन था। वास्तव में देशी राज्य परिषद के इतिहास में यह अधिवेशन एक महत्वपूर्ण घटना हुई। अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी यह अधिवेशन बहुत सफल रहा।

१५ अगस्त १६४७ ई० को देश आजाद हुआ। विदेशी राज्य रियासती जनता की स्वतंत्रता के मार्ग में मुख्य रूप से बाधक था। उसके हटते ही राजाओं को यह समझते देर नहीं लगी कि अब प्रजा की इच्छाओं का आदर करने में ही श्रेय है।

अगस्त से पहले ही राजपूताना के राजाओं ने भारतीय संघ में शामिल होना प्रारम्भ कर दिया था। सब को मिला कर एक संयुक्त राजस्थान बनाने का आन्दोलन शुरू हुआ क्योंकि एक तो छोटी-छोटी रियासतें अलग-अलग जनता की आधुनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ हैं, दूसरे ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से सारा राजपूताना एक ही इकाई माना जाता है। परन्तु वृहत्तर राजस्थान के निर्माण के लिए अभी जमीन तैयार न थी, इसलिए यह उचित समझा गया कि छोटी-बड़ी रियासतों की कई इकाइयां बना दी जायँ। इस योजना के फलस्वरूप मार्च १६४६ ई० में पूर्वी राजपूताना की चार रियासतों का मत्स्य संघ बनाया गया तथा इसी साल मई में उदयपुर आदि दस रियासतों का संयुक्त राजस्थान राज्य नामक संघ बना।

प्रान्त के इन सब संगठित रियासती संघों में शासन की बागडोर उन लोगों के हाथों में सौंप दी गई है जिन्होंने देश की और रियासती जनता की लड़ाइयों में कष्ट-सहन और बलिदान किया था और जो प्रजा की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करते रहे हैं। राजस्थान की जो रियासतें अलग रह गई हैं, उनमें से जयपुर और जोधपुर के मंत्रिमंडलों में लोकप्रिय तत्वों का समावेश हो गया है। इन परिवर्तनों के फलस्वरूप नागरिक स्वतंत्रता पर लगे हुए प्रतिबन्ध दूर हो गये हैं और आम जनता को आर्थिक शोषण और उत्पीड़न से मुक्ति दी जा रही है।
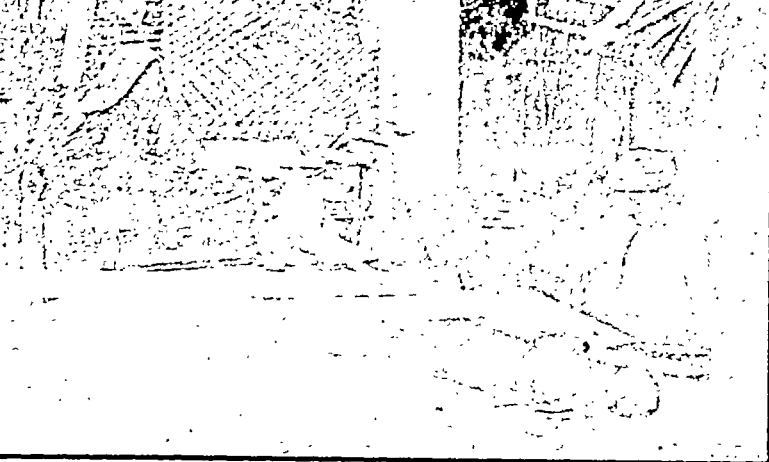
सामाजिक जीवन

राजस्थान की वर्तमान राजनैतिक इकाई राजपूताना के अधिवासियों की सांस्कृतिक परम्परायें प्रायः एक ही हैं तथा उनके धर्म, आचरण, वेशभूषा, खान-पान, उत्सव-त्यौहार, आदि बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। भगवान कृष्ण के जन्म-स्थान ब्रज तथा राज्य-स्थान द्वारका के बीच स्थित होने के कारण यहां कृष्णपरक सँस्कृति की गहरी छाप है। राजस्थानी संस्कृति की धारा मध्य प्रदेश तथा सौराष्ट्र के भी कुछ हिस्सों तक फैली हुई है। विशेषकर मध्य-प्रदेश तथा राजपूताना के सीमावर्ती प्रदेशों के जीवन में तो बहुत साम्य है। इस प्रकार एक तरह से राजपूताना एक सांस्कृतिक इकाई बन गया है।

जाति और धर्म

राजपूताना में भारत के प्रायः सभी मुख्य धर्मों और जातियों के लोग बसते हैं। पर कुछ धर्म और जातियां यहां की विशेष हैं। जैसा कि इस प्रान्त के नाम से प्रगट है, यह राजपूतों की भूमि मानी जाती है। राजपूतों की मुख्य खांपें हैं, जिनकी अनेक शाखा प्रशाखायें हो गयी हैं। राजपूताना की विशेष जातियों में कुछ के नाम ये हैं: भाम्बी, बलाई, भील, मीणा, धाणका, डाकोत, दरोगा (रावणा राजपूत), रावत, सांसी, चारण, खटीक, मेव, डांगी, मेर, रावत, चीता।

भील, मीणा, सांसी, मेर, आदि राजस्थान के आदि मनिवासी माने जाते हैं। मीणा, सांसी, कन्जर, बावरी, आदि कुछ जातियों को जरायम-पेशा कौम करार दिया गया है। इन पर पुलिस की निगरानी रहती है और इन्हें पुलिस में हाजिरी लिखानी पड़ती है। भाम्बी, बलाई, धाणका, खटीक, आदि हरिजन जातियां हैं। राजस्थान में हरिजनों की सामाजिक अवस्था में अभी अधिक सुधार नहीं हो पाया है।

राजपूताना की दरोगा जाति विशेष उल्लेखनीय है। यह राजपूत राजाओं तथा जागीरदारों की संतान हैं जो रखेलियों के गर्भ से उत्पन्न हुई हैं तथा होती रहती है। इनकी दशा वास्तव में बड़ी हीन तथा दयनीय है। दरोगा जाति के लोगों को राजाओं तथा जागीरदारों के टुकड़ों पर निर्वाह करना पड़ता है तथा गुलामी की सी हालत में रहना पड़ता है। इनकी कन्याएं जो डावड़ियां कहलाती हैं, राजपूत कन्याओं के साथ दहेज में दी जाती हैं और विलासिता का साधन बना दी जाती हैं।

मेव, मलकाने और कायमखानी लोग नौ-मुस्लिम कहलाते हैं। मुसलमान हो जाने पर भी इन जातियों ने पुराने हिन्दू रीति-रिवाज नहीं छोड़े हैं। ये

राजपूताने की
महिलाओं की
वेषभूषा

(चित्रकार-
श्री इन्द्र दूगड़)

लोग हिन्दू देवी-देवताओं और त्यौहारों को मानते हैं तथा पहनावा भी हिन्दुओं जैसा पहनते हैं। इनके विवाहों में काज़ी और ब्राह्मण-पंडित दोनों को बुलाया जाता है।

'गाड़ुल्या लोहार' राजपूताना की एक दिलचस्प जाति है। ये लोग बैलगाड़ियों में अपनी सारी गृहस्थी और सारा जीवन लादे उत्तर भारत में भ्रमण करते रहते हैं। लोहा गलाने में ये लोग बड़े सिद्धहस्त होते हैं। ये चलते-फिरते लोहार रास्ते में जगह-जगह डेरे डालते हुए देहात की लोहे के सामान सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। बैलगाड़ी ही इनका घर होता है और वही इनका संसार। कहते हैं छत के नीचे सोना ये लोग अपनी आन के विरुद्ध समझते हैं।

भाषा और लिपि

साधारण तौर पर राजपूताना के निवासियों को अन्य प्रान्तों के लोग मारवाड़ी कहते हैं तथा राजस्थान की भाषा को भी मारवाड़ी के नाम से जानते हैं। परन्तु वास्तव में न तो राजपूताना के सब निवासी मारवाड़ी हैं और वे सब मारवाड़ी भाषा बोलते हैं।

राजपूताना की भाषा को साधारण तौर पर राजस्थानी कहा जा सकता है और यहां की सब बोलियां इसके अन्तर्गत मानी जा सकती हैं। परन्तु कुछ भागों में ठेठ ब्रजभाषा बोली जाती है जो राजस्थानी भाषा नहीं मानी जाती। राजपूताना में बोली जाने वाली भाषाओं के छै भेद हैं।

मारवाड़ी का क्षेत्र सबसे विस्तृत है। यह जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, शेखावाटी, जैसलमेर तथा अजमेर-मेरवाड़ा में बोली जाती है। ढूंढाड़ी बोली का मुख्य क्षेत्र जयपुर और उसके आस पास के इलाके हैं। यह किशनगढ़ तथा कोटा के कुछ भागों में भी बोली जाती है। मेवाड़ी मुख्यतया मेवाड़ तथा उसके निकटवर्ती क्षेत्रों में बोली जाती है। कोटाबूंदी, झालावाड़ आदि हाड़ौती बोली के इलाके हैं।

मेवाती बोली मेवात में अर्थात् अलवर के आसपास बोली जाती है। इसमें हरियाने की खड़ी बोली का तथा ब्रज भाषा का भी कुछ पुट होता है। वागड़ी बोली डूंगरपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़ तथा सिरोही के निवासी बोलते हैं। इसमें गुजराती का पुट रहता है। भरतपुर, धौलपुर तथा करौली के इलाकों में ब्रजभाषा बोली जाती है।

नगरों में खड़ी हिन्दी व हिन्दुस्तानी प्रचलित है और इसे राजपूताना के

सब निवासी आसानी से समझ लेते हैं। कचहरियों में अबतक फारसी व उर्दू का प्रयोग होता था पर अब उसकी जगह धीरे-धीरे हिन्दी को दी जा रही है।

लिखने के लिए हिन्दी तथा उर्दू लिपियों का उपयोग होता है। पर साधारण पत्रव्यवहार तथा बहीखातों में देवनागरी से मिलती-जुलती 'बाण्या-भाटा' लिपि तथा मात्राहीन और शिरहीन मुड़िया लिपि काम में ली जाती है।

पहनावा

राजपूताना के अधिकांश भाग में प्रकृति ने रंगों के प्रदान में बहुत कंजूसी की है। मानो इसी अभाव की पूर्ति के लिए यहां की जनता के जीवन में रंगों की प्रचुरता आ गई है। रंगों की यह छटा विशेषतया राजस्थान की स्त्रियों की वेष-भूषा में देखने को मिलती है।

पुरुषों की वेषभूषा में मार्के की वस्तु पगड़ी और साफा हैं। जाति और क्षेत्र भेद से इनके इतने रूप बन गये हैं कि पगड़ी या साफे के पेच और-ढंग को देखकर यह पता लगाया जा सकता है कि पहननेवाला राजस्थान के किस प्रदेश का रहने वाला है तथा उसकी क्या जाति है।

राजपूत लोग साफे बांधते हैं लेकिन अन्य जातियों के लोग पगड़ियां पहनते हैं। देहात के लोग आमतौर पर लाल पीले या सफेद पग्गड़ बांधते हैं।

पुरुषों की पोशाक देहात की तथा नगरों की भिन्न-भिन्न है। नगरों की पोशाक पर मुगल काल की दरबारी पोशाकों का प्रभाव है। अचकन या शेरवानी और उसके नीचे धोती या चूड़ीदार पायजामा मुख्य पहनावा है।

देहात में अंगरखा और घुटने तक की ऊंची धोती का पहनावा है। अब कुर्ता और गांधी टोपी नगरों के साथ साथ देहात में भी पहुंच गये हैं।

हिन्दुओं और मुसलमानों की पोशाक में देहात में कुछ फ़र्क नजर नहीं आता। पर शहरों के मुसलमान चूड़ीदार या ढीला पायजामा और अचकन पहनते हैं।

राजस्थान में स्त्रियों की वेषभूषा बड़ी रंगीन और कलामय होती है। वे घेरदार लहगा पहनती हैं और उसके ऊपर लूगड़ी या ओढ़नी ओढ़ती हैं। लंहगों और चूंदरियों के रंगों और छपाई की छटा बड़ी मनमोहक होती है, विशेषकर उत्सवों के अवसर पर। शरीर पर अंगिया पहनी जाती है जो केवल स्तनों और आधी बाहों को ढकती है। लंहगो, ओढ़नियों तथा अंगियों को गोटा-किनारी लगाकर सजाया जाता है। मुसलमान स्त्रियों की पोशाक चूड़ीदार पायजामा और चूंदरी है। कुछ जातियों की स्त्रियां चूड़ीदार पायजामे के ऊपर

गणगौर का घूमर-नृत्य
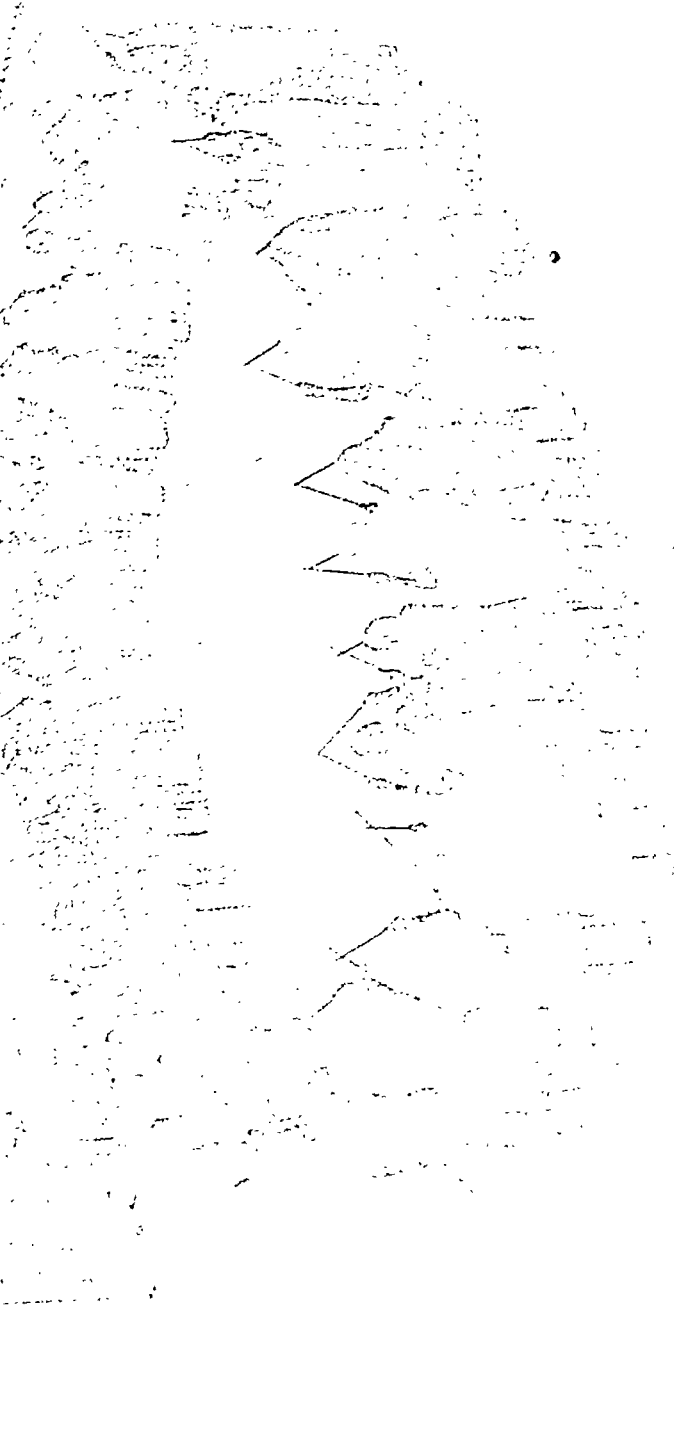
'तिलका' नामक एक चोगा-सा पहनती हैं और ऊपर से ओढ़नी ओढ़ लेती हैं।

आभूषणों का राजस्थान में बहुत प्रचलन है। पुरुष कानों में लोंग या मुरकियां, हाथों और पावों में कड़े, गले में कंठे या तावीज़ और बाहों पर बाजू-बन्द पहनते हैं। जिन्हें राज्य की ओर से सम्मानार्थ या किसी सेवा के पुरस्कार रूप सोना 'बख्शा' जाता है वे पैर में सोने का 'लंगर' पहनने के अधिकारी हो जाते हैं।

स्त्रियां अपनी सामर्थ्य और मर्यादा के अनुसार नख से शिख तक आभूषण धारण करती हैं। सम्पन्न घरों की स्त्रियां तो एक तरह से आभूषणों से लदी रहती हैं। राजस्थान के आभूषण भी विशेष प्रकार के होते हैं। यहां की स्त्रियां माथे के ऊपर मांग में चांदी या सोने का बोरला बांधती हैं। हाथी दांत की चूड़ियां बहुत पहनी जाती हैं। कई जातियों में पीतल, रांग अथवा हाथीदांत की चूड़ियों से सारी बांह ढक ली जाती है।

राजस्थान में पर्दा बहुत कम है। देहात की स्त्रियां तो खेतों पर काम करने जाती हैं और बाज़ारों में सौदा बेचने और ख़रीदने के लिए भी आती जाती हैं। बहुएं बड़ों से घूंघट का पर्दा ज़रूर करती हैं। शहरों में और ख़ासकर ऊंची कहलाने वाली जातियों में पर्दा कुछ ज्यादा है। राजपूतों तथा ओसवालों में स्त्रियों को कड़े पर्दे में रक्खा जाता है।

खान-पान

मुसलमानों के अलावा राजपूताना में अधिकांश हिन्दू जातियां मांसभोजी हैं। शुद्ध निरामिष भोजी तो केवल जैन, ब्राह्मण तथा वैश्य हैं। राजपूत, कायस्थ, गूजर, हरिजन जातियां तथा जंगली जातियां मांस खाती हैं।

गेहूं राजपूताना के कुछ विशेष भागों में ही होता है इसलिए यह नाज यहां का मुख्य भोजन नहीं है। बाजरी, ज्वार तथा मक्की बहुतायत से खाये जाते हैं। बाजरी के सोगरा, राब, खींच आदि भोजन बनते हैं तथा मक्की का घाट बनाया जाता है। घी और लाल मिर्च का यहां बहुत अधिक उपयोग होता है और दावतों में मिठाइयां भी खूब चलती हैं। साग के लिए सांगरी, फोग आदि जंगली पेड़ों की सूखी पत्तियां काम में आती हैं क्योंकि हरे साग-सब्जी पूर्वी राजपूताना के अलावा अन्य भागों में नहीं होते और होते भी हैं तो बहुत कम।

बाफला बाटी, चूरमा और दाल राजपूताने का विशेष भोजन है जो बहुत लोकप्रिय है तथा सुस्वादु भी होता है। सीरा (हलुवा) और गेहूं की लपसी (गुड़ का मोटा दलिया) दावतों में बहुत चलते हैं।
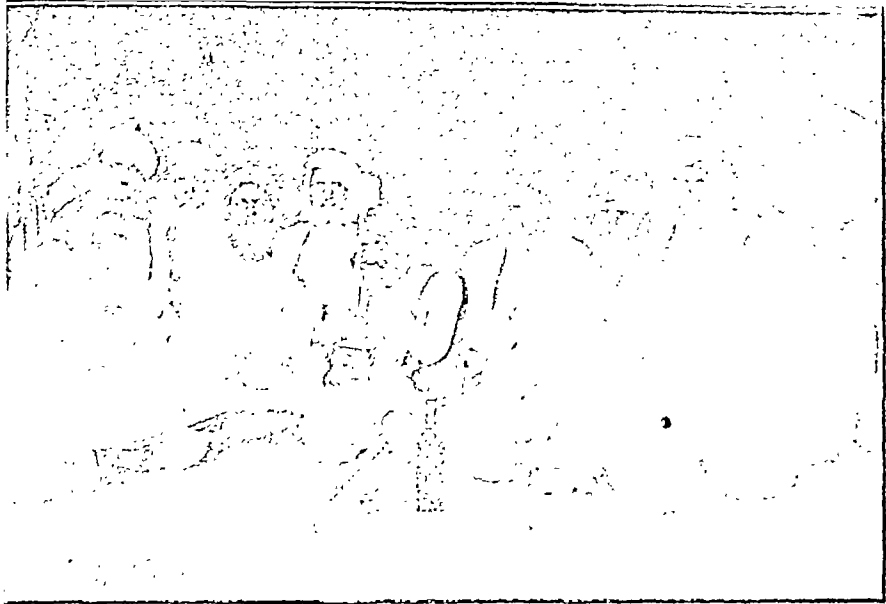
राजपूतों की एक मजलिस

राजपूत सं.गा और नागा

रीतिरिवाज

राजपूताना के विशिष्ट रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार आदि का वर्णन किया जाय तो एक पोथा ही तैयार हो जाय। यहां सामन्तशाही के कारण बहुत-सी ऐसी बातें प्रचलित हो गई हैं जो देश के किसी अन्य भाग में नहीं पाई जातीं। उदाहरण के लिए राजपूताना में बोल-चाल के ढंग में एक दरबारीपन रहता है।

वृद्ध-विवाह, बाल-विवाह तथा अनमेल विवाह की कुप्रथाएं राजपुताना में जारी हैं। बहु-विवाह की प्रथा राजपूतों के अलावा अन्य जातियों में भी है। विवाहित स्त्रियों के अलावा यहां के राजपूत तथा सम्पन्न लोग पासवानें भी रखते हैं। कुछ जातियों में स्त्रियों को भी 'नाता' करने अर्थात् दूसरा पति करने का अधिकार होता है। राजपूतों में दहेज की कुप्रथा का बहुत चलन है।

शराब और अफीम का राजपूतों में बहुत प्रचार है। यहां तक कि 'दारू' और 'कसूमा' (अफ़ीम का गोला) राजस्थानी काव्य साहित्य तक में प्रविष्ट हो गये हैं। ब्राह्मण और वैश्यों को छोड़कर अन्य जातियों के लोग भी दारू पीते हैं और अफीम भी बहुत लोग खाते हैं।

राजपूताने की एक भयंकर कुप्रथा मृत्युभोज है, जिसे यहां मोसर या नुकता कहते हैं। लोगों को घर-बार बेचकर भी मृत व्यक्ति का मोसर करने के लिए मजबूर किया जाता है। मोसर में जाति के हजारों आदमियों को न्यौता दिया जाता है। कई लोग जीते जी अपना मोसर खुद कर जाते हैं, इस डर से कि न मालूम उनकी संतान इस कर्त्तव्य को पूरा करे या नहीं। अब सुधार के युग में यह प्रथा कम होती जा रही है और कई जातियों ने तो इस पर प्रतिबन्ध भी लगा दिये हैं।

यहां विवाह से पहले बींद (दूल्हा) और बींदनी (दुल्हन) की बिंदोरियां निकाली जाती हैं, यानी उन्हें गाजे-बाजे के साथ गांव या नगर में घुमाया जाता है।

राजपूताने में अच्छे-अच्छे घरों की बहू-बेटियां कुओं पर पानी भरने जाती हैं। रंग-बिरंगे कपड़े पहने, सिर पर घड़ा रक्खे, संतुलित और कमनीय चाल से कुए की ओर जानेवाली या कुए से आने वाली स्त्रियों के झुंड बड़ा मनोरम दृश्य उपस्थित करते हैं।

इसी प्रकार विवाह आदि के अवसर पर स्त्रियां ढोल के साथ नाचती हैं। यह मारवाड़ी नृत्य अपनी अलग विशेषता रखता है। मारवाड़ की स्त्रियां बिना ढोलक मंजीरे के ही गीत गाती हैं।

राजपूताने की महिलाओं की वेषभूषा
(चित्रकार श्री इन्द्र दूगड़)

उत्सव, त्यौहार और मेले

राजपूताना के कुछ उत्सव, त्यौहार तथा मेले अपनी विशेषता रखते हैं। राजपूत प्रधान प्रदेश होने के कारण यहां दशहरे के त्यौहार का बड़ा महत्व है। राजधानियों में इस दिन लवाज़मे के साथ सवारियां निकलती हैं। भरतपुर में दशहरे का उत्सव विशेष ठाठ-बाट से मनाया जाता है। 'अलवर की होल।' बहुत प्रसिद्ध है। होली के बाद पञ्चमी को यहां महाराजा की सवारी निकलती हैं और वे सबके साथ होली खेलते हैं जिसमें रंग से भरे हुए लाख के गुलाल-गोटों का खूब उपयोग होता है।

'गणगौर' और 'आखातीज' के त्यौहार राजस्थान में अपनी अलग विशेषता रखते हैं। (1) गणगौर का उत्सव होली के बाद होता है और लगभग पन्द्रह दिन तक मनाया जाता है। प्रतिदिन शाम को सौभाग्यवती स्त्रियां तथा कुमारियां वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर तथा सिर पर 'जेलें' अर्थात् कलश रख कर गाजे बाजे के साथ निकलती हैं। घरों में 'ईसर' और 'गणगौर' की काष्ठ की मूर्त्तियां सजायी जाती हैं और उनका प्रदर्शन किया जाता है। चैत्र सुदी तृतीया को इन मूर्त्तियों को सधवा स्त्रियों के सिर पर रख कर जुलूस निकाला जाता है जिसमें हजारों नर-नारी भाग लेते हैं। उदयपुर में गणगौर की सवारी पीछोला तालाब में निकलती है जिसमें महाराणा भी भाग लेते हैं। जयपुर में तृतीया और चतुर्थी को दर्शनीय सवारियां निकलती हैं। गणगौर के उत्सव में स्त्रियां घर-घर मंगल गीत गाती हैं तथा घूमर-नृत्य नाचती हैं।

(2) आखातीज अर्थात् अक्षय-तृतीया का त्यौहार भी राजपूताना में विशेष महत्व रखता है। इस दिन सब लोग ऊंच-नीच का भेदभाव छोड़ कर आपस में मिलते हैं। इस दिन अगले वर्ष के शकुन लिये जाते हैं। कुमारी कन्याएँ दूल्हा-दुल्हन के स्वांग बना कर घर घर मंगल गान करती फिरती हैं।

राजपूताना में मेले बहुत होते हैं और सावन-भादों में तो इनकी भरमार रहती है। (3) भाद्रपद शुक्ला दशमी को तेजाजी का तथा (4) एकादशी को जल-भूलनी के मेले सारे राजपूताने में भरते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मेले सारे भारत में विख्यात हैं। (5) पुष्कर में कार्तिक पूर्णिमा स्नान का बड़ा भारी मेला लगता है जिसमें पशुओं की प्रदर्शिनी होती है तथा बैलों, घोड़ों और ऊंटों का बड़ा भारी व्यापार होता है। इसी तरह (6) जोधपुर में परबतसर का मेला भी दूर-दूर प्रसिद्ध है। बैल खरीदने वाले इसमें दूर-दूर से आते हैं। दिलवाड़ा, भरतपुर, धौलपुर, अलवर, करौली, गोगामेड़ी (बीकानेर) आदि के मेलों में

भी पशुओं की बिक्री होती है। नाथद्वारा में गोवर्द्धन प्रतिपदा का मेला होता है जिसमें गुजरात के लोग बहुत आते हैं। चैत्री पूर्णिमा को जयपुर के चांदन गांव में महावीर जी का बड़ा भारी जैन मेला लगता है। बीकानेर में कोलायत जी का मेला प्रसिद्ध है।

(10) अजमेर में ख्वाजा साहब का उर्स देश भर में मुसलमानों का सबसे बड़ा मेला है। इस उर्स में देश के हर कोने से लाखों यात्री प्रतिवर्ष आते हैं।

यातायात के साधन

राजपूताना में रेलों तथा सड़कों की कमी है। पश्चिमी भाग में तो इनका नितान्त अभाव है। बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे के अलावा जयपुर, जोधपुर, बीकानेर राजस्थान तथा धौलपुर की अलग रेलवे हैं। अब इनके विस्तार की योजनायें बन रही हैं। देहात में मुख्य सवारी बैलगाड़ी या ऊँट है। रेगिस्तान के प्रदेशों में तो ऊँट ही चल सकते हैं। अच्छे ऊँट सांडनी कहलाते हैं तथा बड़े मजबूत और तेज होते हैं। नागौर के बैल भी भारत भर में प्रसिद्ध हैं।

जीविका के साधन

राजपूताना के अधिकांश निवासियों को जीविका खेती तथा पशु पालन है। पशुओं में भी भेड़-बकरी ज्यादा पाली जाती हैं। इनके झुण्ड-के-झुण्ड पहाड़ों में इधर-उधर घूमा करते हैं। इस कारण राजपूताना में ऊन बहुत पैदा होती है तथा अजमेर-मेरवाड़ा में ब्यावर देश भर में ऊन की सबसे बड़ी मण्डी है परन्तु यह ऊन बहुत अच्छी किस्म का नहीं होता।

ढोला-मारू

भाषा और साहित्य

राजस्थान की भाषा राजस्थानी राजपूताना में, मध्य-प्रदेश के पश्चिमी भाग में तथा राजपूताना से लगे हुए सिंध और पंजाब के कुछ भागों में बोली जाती है। इस प्रकार राजस्थानी का क्षेत्र हिन्दी को छोड़कर भारत की अन्य सब भाषाओं के क्षेत्रों से बड़ा है और इसे बोलने वालों की संख्या दो करोड़ के लगभग है। भारत की भाषाओं में हिन्दी, बंगाली, तेलुगु; तामिल, मराठी तथा पंजाबी के बाद राजस्थानी का ही नम्बर है।

राजस्थानी का पुराना नाम मरुभाषा है। अठारहवीं शताब्दी के एक प्राकृतिक ग्रन्थ 'कुवलय माला' में यह भाषा को भारत की तत्कालीन अट्ठारह मुख्य भाषाओं में माना गया है। अबुल फजल ने अपनी 'आईन-ए-अकबरी' में भी मारवाड़ी भाषा को भारत की महत्वपूर्ण भाषाओं में गिना है।

राजस्थानी साहित्य का विकास ११५० ई० के लगभग अपभ्रंश साहित्य से हुआ। इस काल के अधिकांश ग्रन्थ जैनों की रचना है। इसकी तीन मुख्य शैलियां हैं -- भाट शैली, जैन शैली तथा लौकिक शैली।

भाट साहित्य मुख्य तथा वीरगाथा पूर्ण अथवा ऐतिहासिक हैं। इसके रचयिता चारण लोग हैं जो कलम भी उतनी खूबी से चलाना जानते थे जितनी खूबी से तलवार। इसमें एक वीर जाति के स्वातन्त्र्य संग्राम का उल्लेख है।

राजस्थानी का सबसे प्रथम लेखक शालिभद्र सूरि माना जाता है जिसने ११८५ ई० में 'भरत-बाहुबली रास' नामक ग्रन्थ लिखा। अन्य जैन लेखकों ने भी इस समय के आसपास अनेक ग्रन्थों की रचना की। जैन साहित्य में 'रास' और 'फाग' मुख्य हैं। रास एक प्रकार की कविता है जो रास नृत्य के साथ गायी जाती है। फाग में बसन्त ऋतु का वर्णन होता है तथा इसका विषय शृंगार होता है।

लौकिक राजस्थानी साहित्य में 'ढोलामारू रा दूहा' बहुत प्रसिद्ध है। यह एक सुन्दर प्रेम-काव्य है। ढोला मारू की कथा राजपूताना तथा आसपास के भागों में खूब प्रचलित है। इसी प्रकार 'सदय वच्छ और सावलिंग' तथा माधवानल और कामकन्दला की प्रेम-कथाओं का बहुत प्रचार है। रुक्मणी मंगल' तथा 'नरसी जी रो माहरो' भी राजस्थान की जनता में बहुत प्रचलित हैं तथा गुजरात और व्रज में भी इनका इतना ही आदर है।

राजस्थानी का एक और लोकप्रिय काव्य 'ख्याल' है। इनमें 'जीन माता रो गीत' तथा 'डूंग जी जवारजी रो गीत' मुख्य हैं जिन्हें भाट लोग गाते फिरते हैं।

विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के लिए राजस्थान एक उर्वरा भूमि रहा है। मध्यकाल में यहां कई सम्प्रदाय प्रगट हुए। इन सम्प्रदायों के गुरुओं की रचनायें 'वाणी' कहलाती हैं। भक्त कवियों में सबसे श्रेष्ठ स्थान मीराबाई (१५००–१५४६ ई०) का है जो उत्तर भारत की सब से महान कवयित्री मानी जाती है। विवाह के थोड़े ही दिन वैधव्य को प्राप्त होने पर मीरा ने कृष्ण की भक्ति में संसार को भुला दिया। मीरा के पद राजस्थान तथा गुजरात में ही नहीं बल्कि सारे भारत में लोकप्रिय हैं।

वीरगाथा साहित्य में सबसे पहला स्थान 'पृथ्वीराज रासो' का है। यह ग्रंथ पृथ्वीराज के दरबारी कवि तथा साथी चन्दबरदाई की कृति माना जाता है। इसी प्रकार नरपति नल्ह का वीसलदे रासो भी एक अर्द्ध-ऐतिहासिक काव्य है जो सन् १२१५ ई० में लिखा गया।

राजस्थानी भाषा के कवियों में बीकानेर के महाराजा पृथ्वीराज (१५४९–१६०० ई०) सब से अधिक विख्यात हैं। ये योद्धा भी थे और भक्त भी। हालांकि इन्होंने अकबर की नौकरी स्वीकार कर ली थी परन्तु इन्हें अपने देश और जाति का बड़ा अभिमान था। जब इन्हें मालूम हुआ कि महाराणा प्रताप अकबर के आगे आत्मसमर्पण को सोच रहे हैं तो इन्होंने उन्हें एक मार्मिक पत्र भेजा जिसका महाराणा पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपना इरादा बदल दिया। पृथ्वीराज की सब से प्रसिद्ध रचना 'कृष्ण रुकमनी रा वेलि' है जिसमें कृष्ण और रुक्मणी के विवाह का वर्णन है।

बूँदी के सूर्यमल्ल का 'वंश-भास्कर' एक अच्छा खासा ज्ञानकोष है। दो हज़ार से अधिक पृष्ठों का यह ग्रन्थ पिंगल में लिखा हुआ है तथा इसमें राजस्थानी गद्य और पद्य दोनों का मिश्रण है।

राजस्थानी में गद्य की रचनाओं का प्रारम्भ सबसे पहले जैनों ने किया। जैन साधुओं ने अपनी धर्म-कथाओं में इसका उपयोग किया। गद्य की अन्य रचनाओं में इतिहास, वंशावली, चरित्र, गाथाएँ तथा प्रेम-कथाएँ हैं। इनके द्वारा हमें तत्कालीन राजस्थान का तथा मध्यकालीन भारत के विषय में बहुमूल्य जानकारी प्राप्त होती है।

इतिहास वृत्तों में 'ख्यात' तथा 'बात' सबसे महत्वपूर्ण हैं। ख्यात लेखकों में मुहणोत नैणसी अग्रगण्य है। यह जोधपुर के महाराजा जसवंत सिंह का मंत्री था। नैणसी की ख्याति में राजस्थान तथा सौराष्ट्र के राजवंशों का बड़ा विशद वर्णन है। इस कारण नैणसी को 'राजपूताना का अबुल फ़ज़ल' कहा जाता है।

आधुनिक राजस्थानी आन्दोलन के मुख्य कर्णधारों में रामकरण आसोपा, शिवचन्द्र भारतीय, गुलाबचन्द्र नागोरी, जयनारायण व्यास, रामसिंह, सूर्यकरण पारीक के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अजमेर के मुंशी समर्थदास ने राजस्थानी साहित्य के उद्धार के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। इन्होंने लगभग पचास वर्ष पूर्व अजमेर में राजस्थान प्रेस खोला तथा 'राजस्थान समाचार' नामक एक मासिक पत्र भी प्रकाशित किया। राजस्थान प्रेस से राजस्थानी भाषा के कई उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रकाशित किये गये।

शाहपुरा का बारहठ केसरीसिंह राजस्थानी कविता में नवीन चेतना का स्फुरण करने वाला पहला काम है। राजनैतिक तथा क्रान्तिकारी प्रवृत्तियों के कारण इतनी जागीर जप्त कर ली गयी। केसरीसिंह के सोरठों से प्रभावित होकर उदयपुर के महाराणा फतहसिंह ने दिल्ली दरबार में जाने का विचार त्याग दिया था। ये सोरठे चेतावनी राचूंगट्या के नाम से प्रसिद्ध हैं। उदयराज उजाला तथा नाथूदान महियारी केसरीसिंह के अनुवर्ती काम हैं।

शिवचन्द्र भारतीय एक प्रसिद्ध राजस्थानी नाटककार हैं। पुरोहित हरीनारायण, मोतीलाल मनोरिया अगर नाहटा, भंवरलाल नाहटा तथा चन्द्रसिंह भी राजस्थानी के मान्य लेखक हैं।

बीकानेर का राजस्थानी साहित्य विद्यापीठ अनुसंधान का अच्छा कार्य कर रहो है। इसकी ओर से 'राजस्थानी' नामक पाक्षिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। उदयपुर की राजस्थान विश्व विद्यापीठ में भी राजस्थानी साहित्य के अनुसंधान का कार्य हो रहा है।

ऊपर केवल राजस्थानी भाषा साहित्य तथा उसके निर्माताओं का जिक्र किया गया है। परन्तु राजस्थान के अनेक पुराने और नये कवियों, ग्रन्थकारों, इतिहास वक्ताओं, विचारकों, लेखकों आदि ने अन्य देशी तथा विदेशी भाषाओं के साहित्य को समृद्ध किया है।

व्रजभाषा के साहित्य में सतसईकार कविवर बिहारी का तो ऊंचा स्थान है ही, वृन्द, जमात, आदि ने भी इस भाषा में कविता लिखी है आधुनिक युग में वीर विनोद के रचयिता स्व० कविराजा श्यामलदान, विश्व विख्यात पुरातत्ववेत्ता और प्राचीन-लिपि शास्त्रज्ञ महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचंद ओझा तथा अनेक अंग्रेजी ग्रन्थों के लेखक श्री हरविलास सारदा के नाम उल्लेखनीय हैं।
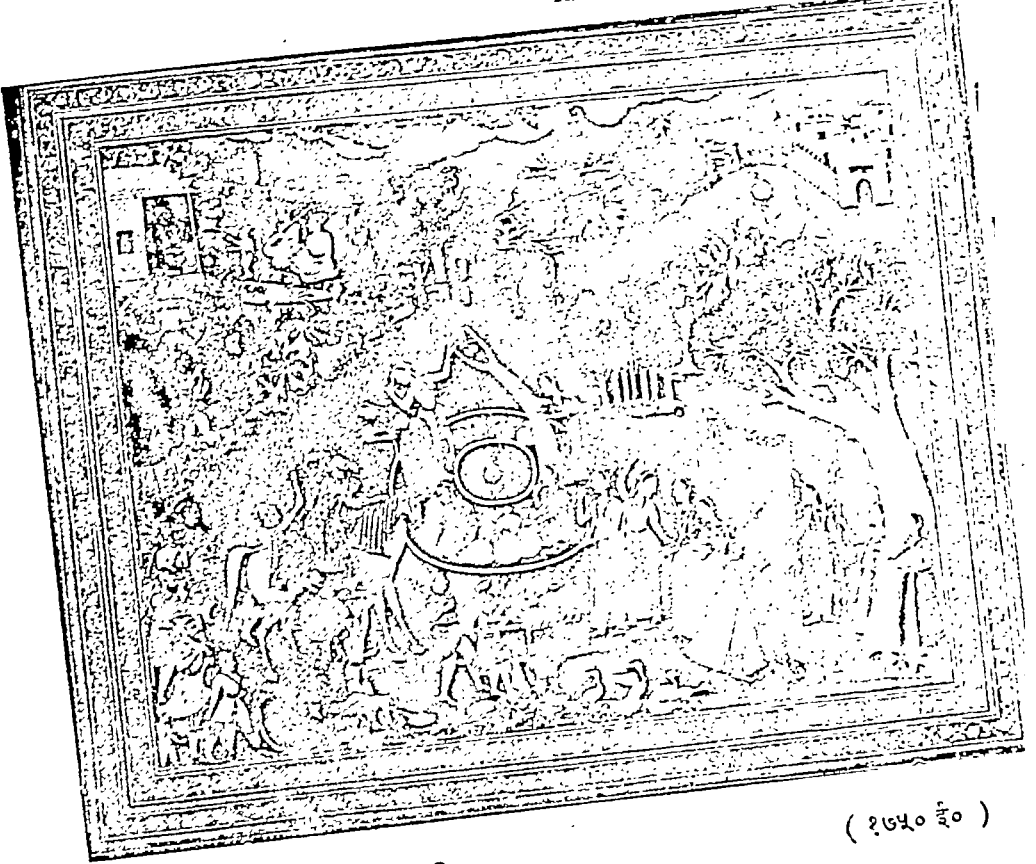
(१७५० ई०)

राजस्थानी कलम का एक चित्र

[कापी०—डि० ग्राफ ग्रार्कॅलाजी]

भारत के इतिहास के पन्ने राजस्थान की वीरता की गौरव गाथाओं से परिपूर्ण हैं परंतु बहुत ही कम इतिहासज्ञों का ध्यान उसके कलापूर्ण जीवन की ओर गया है। आज भी जब हम राजस्थान के विषय में सोचते हैं तो सर्वप्रथम हम वहाँ की जनता के अज्ञान और रूढ़िवाद का ही ख्याल करते हैं। निश्चय ही राजपूताना युग की दौड़ से पीछे हैं, राजाओं के अप्रगतिशील और प्रतिगामी शासन-काल में ज्ञान का प्रकाश यहाँ बहुत ही कम फैला और प्रगति के दरवाजे काफ़ी समय तक बंद रहे परन्तु कला के क्षेत्र में वह कई प्रांतों से आज भी आगे है।

राजस्थान की कला के प्रमुखतः दो रूप रहे हैं। एक लोककला और दूसरी राज्याश्रित कला। लोक कला का संबंध जनता की कला से है, जो घर-घर में व्याप्त है। उसे देखने के लिए किसी विशिष्ट स्थान पर जाने की आवश्यकता नहीं, वह तो लोगों के पहनाव, बनाव, शृङ्गार और सजावट में निहित है। राज्याश्रित कला वह है जो राजाओं के आश्रय में पनपी और विकसित हुई है और जिसका संबंध जनता से बहुत कम रहकर राजाओं के रागरंग, विलास, वैभव तथा रुचि से बहुत अधिक रहा है। कला के क्षेत्र में यह राज्याश्रित कला राजस्थान की बहुत बड़ी देन रही हैं। यहाँ के राजा महाराजाओं का दिल्ली और आगरा के बादशाहों से विशेष संपर्क रहा, इसलिए शनैः-शनैः उनकी अनेक परंपराएँ ज्यों की त्यों राजपूताना में चली आई। यहां के पोशाक, भवन, निर्माण, चित्रकला, संगीत, नृत्य, काव्य आदि सब पर बाहर का बहुत प्रभाव पड़ा। और चूंकि जनता का अधिकतर सम्बंध राज-कर्मचारियों के रूप में राजाओं से रहा, इसलिए उनका धीरे-धीरे जनता में भी प्रचार हुआ। यही कारण है कि आज भी कई गांवों और नगरों में उसी प्रकार की पोशाकें पहनी जाती हैं तथा मकानों के रूपरंग भी मुस्लिम ढंग के हैं। जयपुर इसका बहुत बड़ा केन्द्र है। यहां के मकान, महल, बाज़ार आदि देखकर यही भान होता है कि मुग़लकालीन दिल्ली का नकशा यहां खींचा गया है। हिंदुओं के घरों के प्रवेश द्वारों के ऊपरी भाग पर गणेश और कृष्ण की मूर्तियां स्थापित देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे मस्जिदों और मक़बरों में इन देवताओं की प्रतिष्ठा की गई हो। हिंदू-मुस्लिम संस्कृति का यह सुन्दर सामञ्जस्य देखकर चित्त को बड़ी प्रसन्नता होती है, विशेषकर ऐसे समय में जब कि हिंदू संस्कृति और मुस्लिम संस्कृति में इतना भेद दर्शाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

१८ वीं शताब्दी)
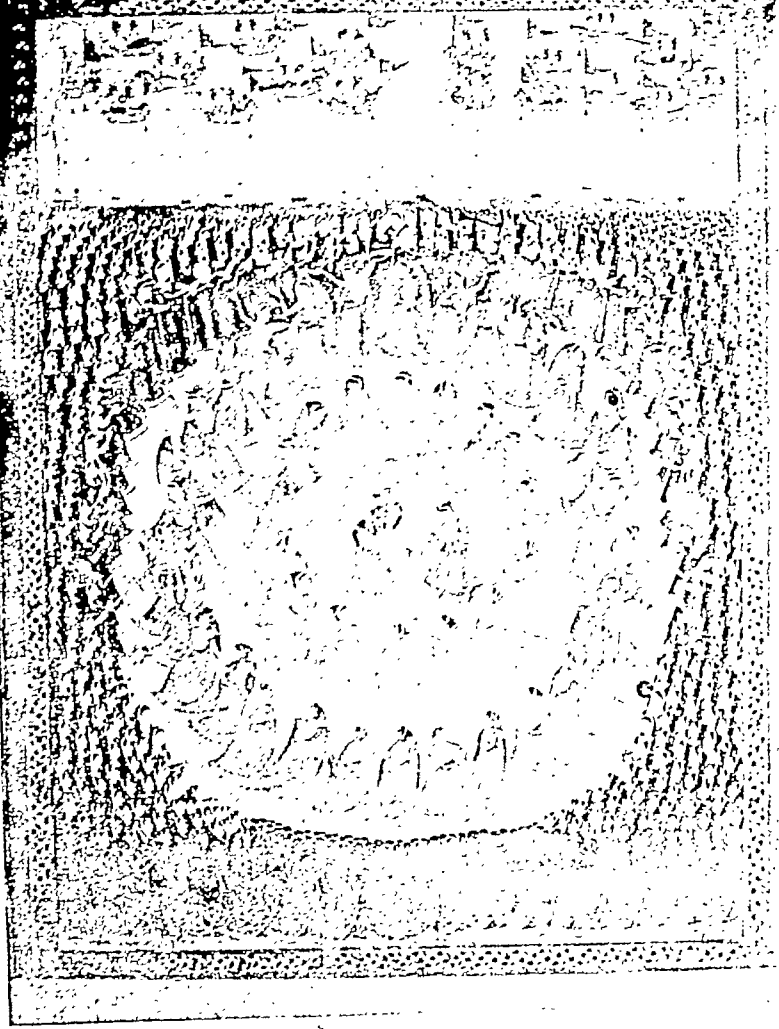
रासलीला

(जयपुर राजप्रसाद संग्रह)

[कापी०—डि० आफ आर्केलाजी]

गोधूलि-वेला

[१६ वीं शताब्दी]

भीतरी दृश्य

गुम्बद

[कापी०—हि० आ० आर्केलाजी]
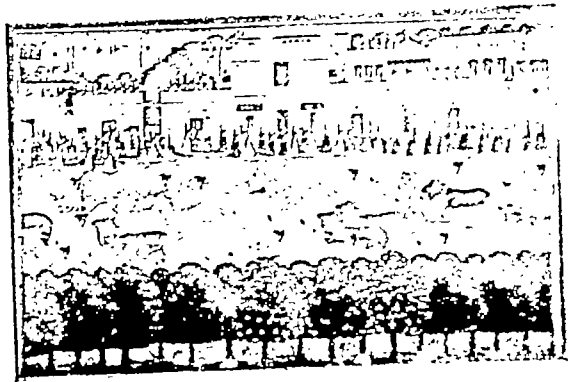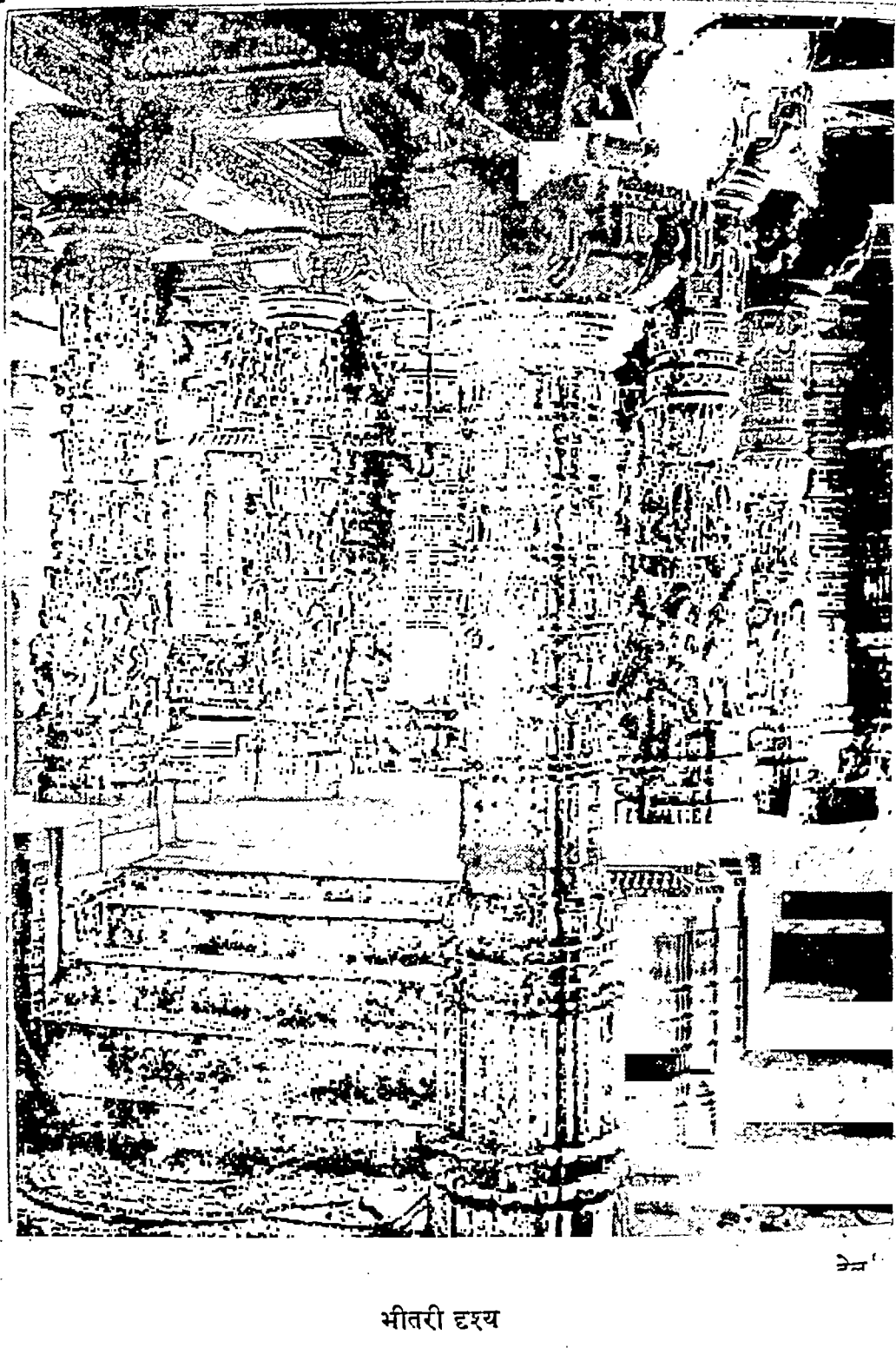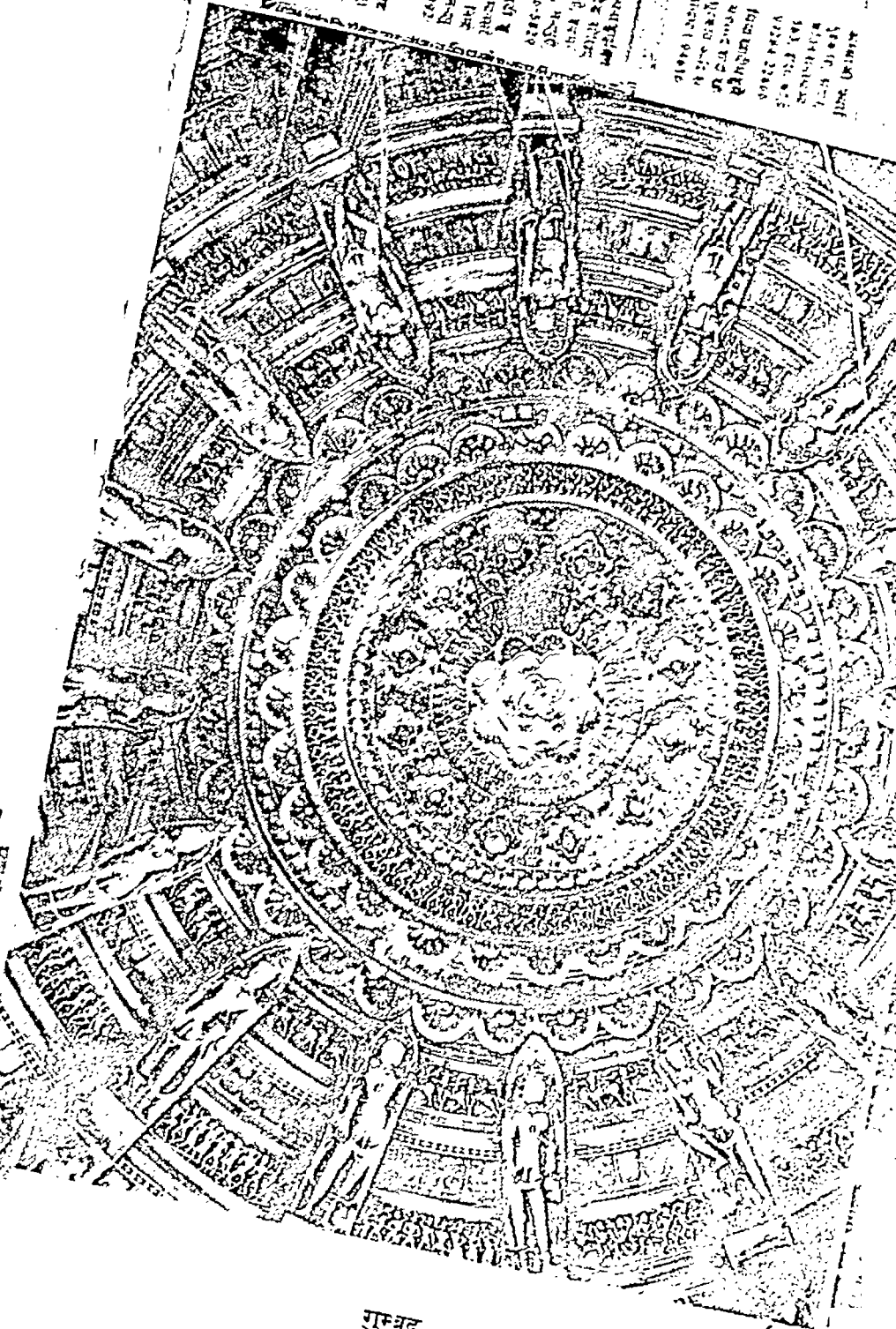
चित्रकला

प्राचीन राजपूत कलम में, जहां राधाकृष्ण के प्रेम के विविध पहलू बारीक-से-बारीक-रेखाओं द्वारा अंकित किये गये हैं वहां राधा को पोशाक कहीं-कहीं मुगल मलका की और कृष्ण को मुगल बादशाह की सी दर्शाई गई है। उसके साथ ही चित्र की सीमा-रेखाओं पर मुगल-कलम की सी पचीकारी और नक्काशी के दर्शन होते हैं।

राजपूत कलम की भी अनेक शाखाएँ हैं, जिनमें जम्मु, कांगड़ा तथा राजस्थानी कलमें प्रमुख हैं। पंजाब के जम्मु और काँगड़ा नामक पहाड़ी प्रदेशों में विकसित होने वाली काँगड़ा और जम्मु कलमें लोक-जीवन-अंकन की दृष्टि से पराकाष्ठा तक पहुंच चुकी थीं जबकि तत्कालीन मुगल शैली केवल बादशाहों के महलों और हरमों तक ही सीमित थी। जम्मु, काँगड़ा और राजस्थानी कलम में काफ़ी साम्य होते हुए भी कुछ सूक्ष्म अंतर भी है। कोमलता और सौंदर्य की दृष्टि से जम्मु कलम इतनी प्रभावशाली न होते हुए भी भावनाओं की अभिव्यक्ति में अधिक प्रबल, ब्यौरेवार वर्णन में अधिक स्पष्ट और वेगपूर्ण है। राजस्थानी कलम की रेखाओं में एक अद्वितीय सौंदर्य और बल है।

राजस्थानी कलम के विषय राधाकृष्ण की क्रीड़ाएं, राग-रागनियां, रामायण, नायक-नायिका-प्रेम, शृङ्गार आदि होते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाशित चित्र राजस्थानी कलम के उत्कृष्ट नमूने हैं। इन चित्रों में स्त्री-पुरुषों के चेहरों पर रेखाओं द्वारा अंकित भावभंगियों की मनमोहकता अद्वितीय है। एक चित्र में चित्रकार ने एक ही दृष्टि के सम्मुख जीवन की अनेक झांकियां प्रस्तुत की हैं, जो कि आधुनिक कला-विज्ञान की दृष्टि से केवल चलचित्रों द्वारा ही दिखलाई जा सकती हैं। दूसरा चित्र रामलीला का है, जोकि जयपुर के भित्ति चित्रों का एक उत्कृष्ट नमूना है। उसमें कृष्ण और गोपियों की नृत्यमुद्राओं में एक तानमय लवलीनता है। वस्त्रों की पहचान कलात्मक ढंग से अंकित की गयी है तथा भावभंगियों में एक अद्वितीय कमनीयता है, यही राजस्थानी कलम की विशेषता है।

चित्रकला के लिए जैसे जयपुर प्रसिद्ध है उसी तरह—नाथद्वारा भी अपनी कलम के लिए प्रसिद्ध है। उसकी अपनी अलग ही शैली है और कोई-कोई तो उसे नाथद्वारा कलम के रूप में एक विशिष्ट शैली भी मानते हैं। इस कलम में, जहाँ विषयों की मनमोहकता है, वहां रंगों का भी बड़ा सौन्दर्य है।

मेघ रागनी (१७वीं शताब्दी)

पटमंजरी रागनी
(१८वीं शताब्दी)

वसन्त रागनी (१७वीं शताब्दी)

१७वीं शताब्दी का एक चित्र

कापी०—डि० आफ आर्केलाजी
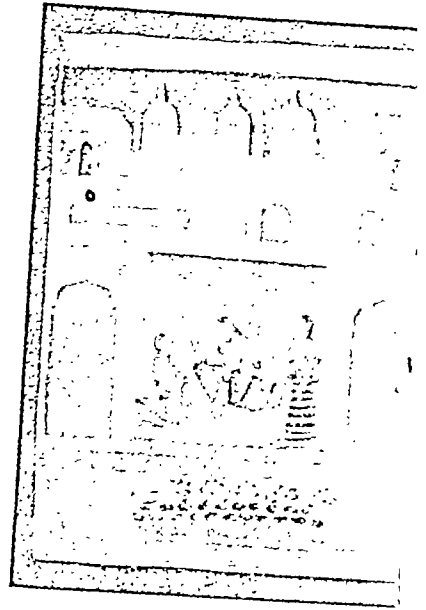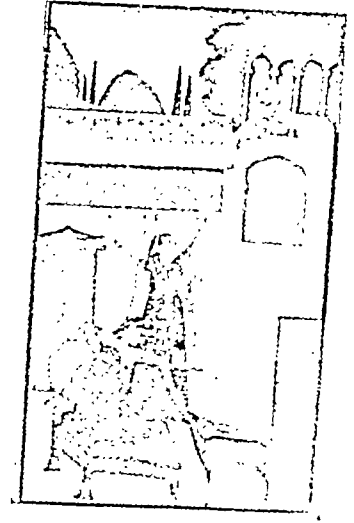
बीकानेर और उदयपुर के राज्य संग्रहों में राजपूत और कांगड़ा कलम के उत्कृष्ट चित्र विद्यमान हैं, जिनमें रागरागनियों और ऋतुओं के चित्र अद्वितीय हैं। जयपुर और उदयपुर में आज भी ऐसे चित्रकार मौजूद हैं, जो प्राचीन राजपूत-कलम के चित्रों की हूबहू नकल कर सकते हैं।

अन्य कला-कौशल

विविध कला-कौशल के लिए राजस्थान आज भी अपना विशिष्ठ स्थान सुरक्षित रखे हुए है। जयपुर के दस्तकार, सोना चांदी तथा जवाहरात के कारीगर हाथी दांत की चीजें बनानेवाले कागज, कुट्टी, घास-फूस, मोर-पंखी और मूर्तियों के कारीगर अपनी कला के लिए विख्यात हैं। नाथद्वारा के मीनाकार सांगानेर के छींपे, घोसूंडा के कागज बनाने वाले, जोधपुर के रंगरेज, जयपुर के मूर्तिकार तथा उदयपुर के खराद पर खिलौने बनानेवाले अपनी प्राचीन कलात्मक परम्पराओं को बनाये हुए हैं। भरतपुर में चंवर, चन्दन के पंखे, खस के पंखे व डिब्बे बनते हैं। बीकानेर और जैसलमेर की ऊन की लोहियां बड़ी साफ और मुलायम होती हैं। बीकानेर में डबगर लोग ऊंट की खाल के कुप्पे व कुप्पियां बहुत अच्छी बनाते हैं। कोटा में बारीक मलमल बुनी जाती है और चांदी के बर्तन तथा घोड़ों और हाथियों का साज बढ़िया बनता है। मारवाड़ में चूंदड़ी के बन्धेज की कलापूर्ण रंगाई तथा अन्य दस्तकारियों के अलावा कामदार जूते बड़े सुन्दर और हलके बनाये जाते हैं। सिरोही की तलवारें तो प्रसिद्ध हैं ही, यहां तीर-कमान, भाले और बन्दूकें भी बनती हैं। सांगानेर और किशनगढ़ में हाथ के कागज का उद्योग पुराने जमाने से चला आता है। हाथी दांत का काम तो लगभग सारे राजपूताना में होता है, पर जयपुर और मारवाड़ में विशेष रूप से। जयपुर और टोंक के बने वाद्य-यन्त्र, सितार, सारंगी, तबले, आदि प्रसिद्ध हैं। यंत्रीकरण की इस दौड़ में तथा राज्याश्रय के अभाव में यह स्थिति बहुत समय तक रहेगी नहीं, इसीलिए सर्वत्र ऐसे प्रयत्नों की आवश्यकता है जिनसे यह कला कम-से-कम सुरक्षित तो रह सके। यदि पर्याप्त मात्रा में लोकाश्रय प्राप्त नहीं हुआ तो कुछ ही समय में इनका चिन्ह भी शेष नहीं रहेगा।

संगीत

विविध दस्तकारियों और उपयोगी कलाओं के अतिरिक्त राजस्थान ने ललित कलाओं में भी कभी समस्त भारतवर्ष का नेतृत्व किया है। संगीत में उस्ताद अलावन्दा खां और जाकिरुद्दीन खां के प्रसिद्ध घराने राजस्थान में ही पनपे हैं,

[कापी०—डि० आफ आर्केलाजी]

भ्रमर गीत

मुरली (१८ वीं शताब्दी)
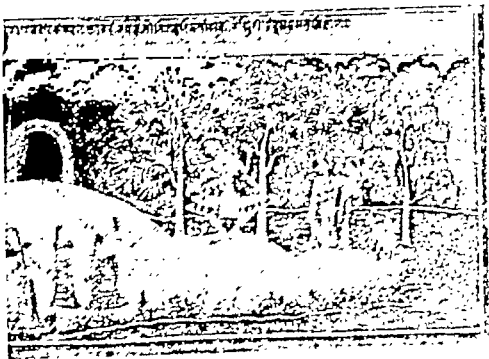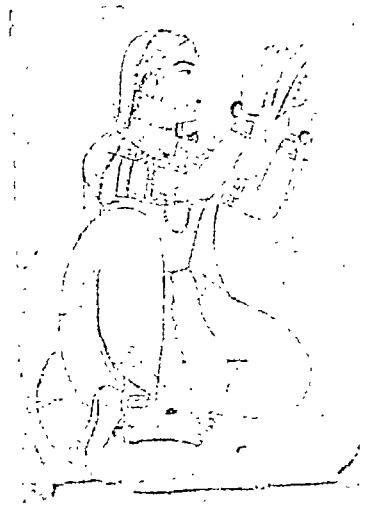
राधाकृष्ण (१८ वीं शताब्दी)

मंजीर-वादन (१८ वीं शताब्दी)

जिनकी गायकी आज समस्त भारतवर्ष में केवल इन्हीं के घरानों की धरोहर है। प्रसिद्ध गायक नसीरुद्दीन और जियाउद्दीन खां इन्हीं के वशज हैं। इन्हीं के पूर्वजों ने ध्रुपद गायकी की एक विशिष्ट आलाप और नोमतोम की शैली को जन्म दिया जो स्वर सौन्दर्य और भाव सौन्दर्य की दृष्टि से सर्वोपरि है। जयपुर में भी आज तानसेन के गायकी घरानी के अहमद खां और कायमहुसेन जैसे सितार जानने वाले तथा करीम खां जैसे ख्याल गायक विद्यमान हैं। नाथद्वारा और कांकरोली के मन्दिरों में भी शास्त्रीय संगीत की एक विशिष्ट शैली प्रचलित है, जो ध्रुपद गायकी के अनुरूप होते हुए भी एक विशेष धार्मिक महत्व लिये हुए हैं। वहां भी आज अच्छे-अच्छे गायक, वाद्यकार तथा पखावजिये विद्यमान हैं। बीकानेर, अलवर और करौली में भी कुछ अच्छे गायक मौजूद हैं, जिनकी गायकी अधिकतर खयाली ढंगकी होते हुए भी उदयपुर के प्रसिद्ध नोमतोम घराने की परम्पराओं से भिन्न नहीं है। इसी प्रकार नृत्य में भी जयपुर लगभग १५० वर्ष से एक प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। अवध के नवाबों के समय में जब कालका बिन्दादीन के नेतृत्व में कत्थक नृत्य शैली का आविर्भाव हुआ, तब उनके अनेक शिष्य भारत के विविध नगरों में फैले। जयपुर के कलाप्रिय और रसिक राजाओं ने भी इन नृत्यकारों को अपने यहां आश्रय दिया और कुछ ही समय में जयपुर कत्थक नृत्य का भारतवर्ष में दूसरा सबसे बड़ा केन्द्र बन गया। यही नहीं यहां के नृत्यकारों ने उसे एक नवीन कलात्मक रूप देकर लखनऊ की कत्थक शैली से कई मानों में भिन्न बनाया, जो बाद में जयपुर शैली के नाम से प्रख्यात हुआ।

नाट्यकला

नृत्य और संगीत की तरह राजस्थान में आज नाट्य के अनेक प्राचीन रूप भी विद्यमान हैं, जिनमें परबत शहर, मारवाड़ के कठपुतली नचाने वाले, बीकानेर, बगड़ी के रासधारी वाले, घोसुण्डा, मेवाड़ के खयाल वाले तथा मेवाड़ के गौरी नाचनेवाले बहुत प्रसिद्ध हैं। आधुनिक सिनेमा ने इन लोकप्रिय कलाओं को अत्यधिक आघात पहुंचाया है। यही कारण है कि इन प्राचीन कलाविदों को अपनी आजीविका के लिए खेती-मजदूरी तथा नौकरी का आश्रय लेना पड़ा है। परबत शहर के कठपुतली नचाने वाले अपने कन्धों पर काठ की पुतलियों का बोझा ढोये हुए, अपने फटे पुराने चिथड़ों में मीलों चलकर लोगों का मनोरंजन कौड़ियों के भाव करते हैं। कठपुतलियों द्वारा वास्तविक कथा नृत्य की सृष्टि करनेवाले ये अद्वितीय सूत्रधार आज वास्तव में हमारे राष्ट्र की सच्ची

ढोली परिवार

पनिहारी
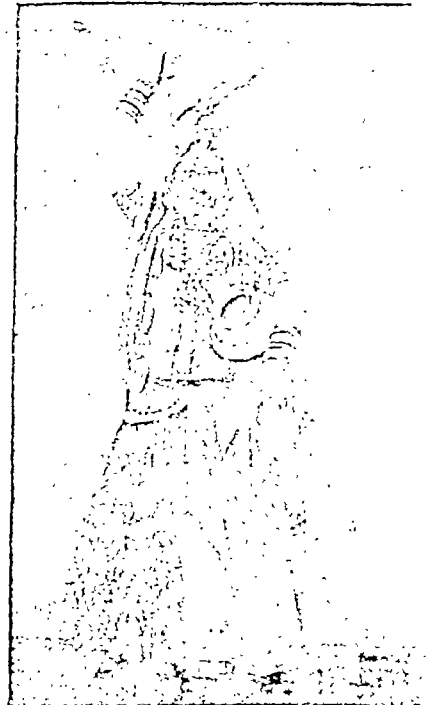
धरोहर हैं। मेवाड़ के भीलों में भी गौरी नृत्य की परम्परा बड़ी सुन्दर है। गौरी उनका सर्वश्रेणी धार्मिक कथा-नृत्य है, उसमें भगवान शिव के रौद्र रूप का दिग्दर्शन विविध कथाओं के रूप में कराया जाता है। भाद्रपद में सुबह से शाम तक किसी गांव के मध्यभाग में यह नृत्य होता है और भील लोग विविध कलात्मक पोशाकों में भैरव के सम्मुख नाचते हैं। यह नृत्य केवल स्वान्तःसुखाय होता है। घोसुन्डा के ख्यालिये और बगड़ी के रासधारो वाले अमरसिंह राठोड़ के खेल अत्यन्त मनोरंजक ढङ्ग से करते हैं।

स्थापत्य और मूर्ति-कलायें

जिस तरह राजस्थान चित्र, नृत्य संगोत, कला-कौशल में आज भी सर्वोपरि है उसो तरह स्थापत्य के भी अद्वितीय नमूने विविध स्थानों में पाये जाते हैं। सबसे प्राचीन स्थापत्य चंबल नदी के किनारे पर बसे हुए भैसरोड़ गढ़ के बाड़ाली नामक मंदिरों में विद्यमान है। ये मंदिर लगभग सातवीं शताब्दी के हैं और अपनी खण्डित और जीर्ण-शीर्ण अवस्था में भी प्राचीन स्थापत्य के सौन्दर्य का दिग्दर्शन कराते हैं। विदेशी प्रभाव से शून्य इन मंदिरों की मूर्तियां विशुद्ध हिन्दू स्थापत्य की भाव प्रधान मुद्राओं और अतिशय अलंकरण से युक्त हैं। चित्तौड़ दुर्ग पर भी चित्राङ्गद मौर्य के समय के मन्दिर विद्यमान हैं और कहीं बौद्ध स्तूप भी पाये गये हैं। एकलिङ्ग के मंदिर के निकट नागदा नामक स्थान में स्थित ११ वीं शताब्दी के सास-बहू के मन्दिर भी अत्यन्त सुन्दर हैं। तांत्रिक युग के हठयोगियों की मुद्राओं से परिपूर्ण इन मन्दिरों के बाहरी भाग ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान हैं। मन्दिर के भीतरी भाग में शिल्प और स्थापत्य का एक अपूर्व समारोह-सा प्रतीत होता है। आबू के देलवाड़ा मन्दिर और राणापुरा का जैन मंदिर तो भारतीय स्थापत्य के उत्कृष्ट नमूने हैं ही। देलवाड़ा के मन्दिरों में संगमरमर की बारीक खुदाई का काम श्रेष्ठतम कारीगरी का नमूना है तथा देखने वालों को आश्चर्यचकित कर देता है। कुम्भलगढ़ के खण्डित मन्दिरों में धरती के कुछ ही नीचे आज भी अत्यन्त भावात्मक और कलात्मक मूर्तियां छिपी पड़ी हैं। अजमेर का ढाई दिन का झोंपड़ा, जोधपुर का मंडोर और जयपुर का आम्बेर भी इस दृष्टि से दर्शनीय स्थानों में से हैं।

राजपूताने की ग्राम्य बालायें
(चित्रकार-श्री गोवर्धनलाल जोशी)
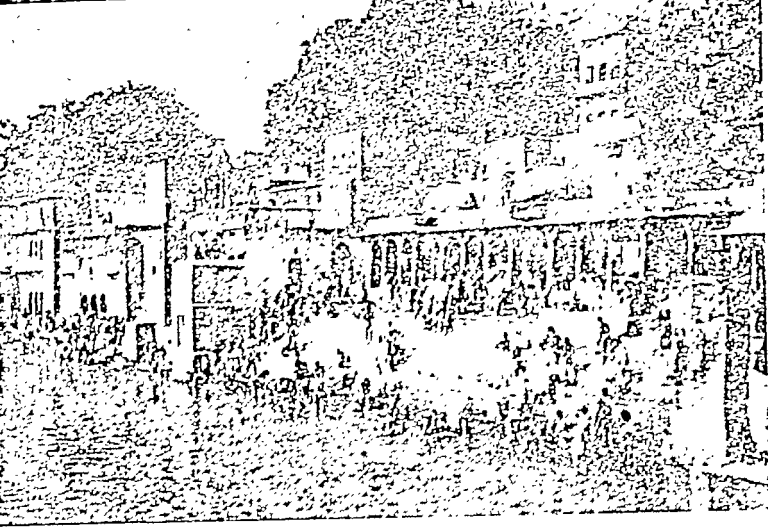
वाराहघाट—पुष्कर

अजमेर-मेरवाड़ा

राजपूताना यदि भारत का हृदय देश है तो अजमेर-मेरवाड़ा राजपूताना का हृदय प्रदेश है। यह राजपूताना के बीच में आरावली की घाटी में एक छोटा सा प्रान्त है। इसके दो भाग हैं – अजमेर तथा मेरवाड़ा। अजमेर जिले का नाम अजमेर नगर के कारण है तथा मेरवाड़ा मेर जाति के लोगों का निवास स्थान है।

प्राचीनकाल में यह इलाका महाभारत की कुछ घटनाओं की भूमि रहा है पुष्कर के पास पांडव कुंड (पंच कुंड) से पांडवों ने अपने अज्ञातवास के कुछ दिन बिताये थे। नाग पहाड़ में अनेक ऋषियों के आश्रम हैं जिनमें अगस्त की गुफा उल्लेखनीय है।

अजमेर नगर छठी शताब्दी ई० में राजा अजयपाल ने बसाया। इसका नाम अजमेरु है। मध्य युग में अजमेर चौहानों की राजधानी रही जिनका अधिकार क्षेत्र गुजरात, मालवा तथा दिल्ली तक फैला हुआ था। अजमेर के पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गोरी को कितनी ही बार हराया था।

अलाउद्दीन खिलजी, शेरशाह तथा मुग़ल सम्राटों के ज़माने में अजमेर एक महत्वपूर्ण स्थान समझा जाता था। अकबर ने तो राजपूताना की लड़ाइयों के लिए इसे कुछ दिन के लिए अपनी राजधानी बना लिया था। अजमेर के सूबे में राजपूताना का अधिकतर हिस्सा था। जहांगीर को अजमेर बहुत पसन्द था। इंगलैंड के राजा जेम्स प्रथम के राजदूत सर टामसरो ने जहांगीर से पहली मुलाकात अजमेर में ही की थी, जिसका स्मारक यहां बना हुआ है। शाहजहां ने आनासागर के बांध पर संगमरमर की बारह दरियां बनवाईं। मौजूदा अजमेर नगर शाहजहां का ही बसाया हुआ है। शाहजहां के मृत्यु के बाद उसके पुत्रों में युद्ध हुआ तो दारा ने अजमेर में ही शरण ली और अजमेर से सातमील दूर दोराई के मैदान में दारा और औरंगजेब का युद्ध हुआ। मुग़ल साम्राज्य के पतन के बाद अजमेर मराठों के कब्जे में आया और सन् १८१८ ई० में दौलतराव सिंधिया की पराजय के बाद यहां अंग्रेजों का अधिकार हुआ। अंग्रेजों ने अजमेर के साथ मेरवाड़ तथा जोधपुर और उदयपुर का कुछ इलाका मिलाकर एक नया प्रान्त बना दिया। जोधपुर और उदयपुर के इलाके सन् १९३९ ई० में वापिस कर दिये गये।

अंग्रेजों ने अजमेर-मेरवाड़ा को राजपूताना के शासन का केन्द्र बनाया। यहां का चीफ कमिश्नर राजपूताना में गवर्नर का एजेन्ट कहलाता था और
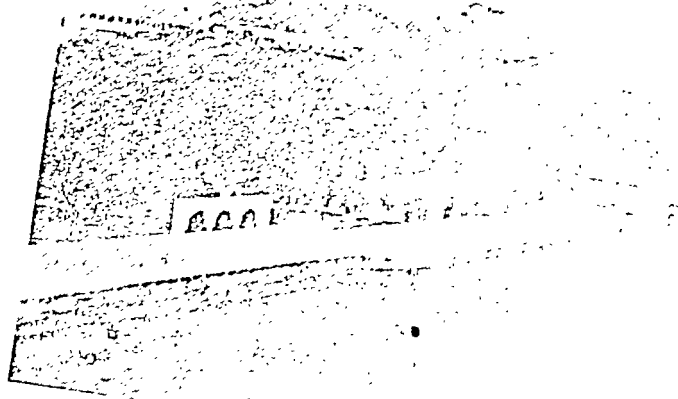
उसकी सब राजाओं पर धाक रहती थी।

राजनैतिक महत्व के अलावा अजमेर-मेरवाड़ा का धार्मिक महत्व भी कम नहीं है। कर्नल टाड ने लिखा है कि पवित्र पुष्कर झील तथा ख्वाजा साहब की दरगाह के कारण अजमेर की पवित्रता दुगुनी हो गई है। ये दोनों स्थान हिन्दुओं तथा मुसलमानों के विख्यात तीर्थ हैं। अजमेर आर्यसमाज का भी मुख्य केन्द्र है। स्वामी दयानन्द की मृत्यु यहां होने के कारण यह आर्यसमाजियों का भी तीर्थ है। यहां महात्माजी ने वैदिक यन्त्रालय नामक छापाखाना खोला तथा अपने मिशन को चलाने के लिए परोपकारिणी सभा की स्थापना की।

राजपूताना के बीच में होने के कारण इस डर से कि यहां की राजनैतिक जाग्रति का असर आस-पास की रियासतों पर न पड़े, अंग्रेजों ने यहां का शासन बड़ा कड़ा बनाये रक्खा। सारे भारत को शासन-सुधारों की किरणें मिलीं पर अजमेर-मेरवाड़ा पर उनका कोई असर नहीं हुआ। फिर भी इस प्रान्त ने राजनैतिक दृष्टि से सारे प्रान्त का नेतृत्व किया। सन् १९२९ ई० के असहयोग आन्दोलन में अजमेर ने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का जो उदाहरण पेश किया वह स्मरणीय है। यहां दरगाह में राजनैतिक कान्फ्रेंसें हुईं जिनमें गांधीजी पं० मोतीलाल नेहरू, लोकमान्य तिलक, डा० अन्सारी, मौ० मोहम्मद अली, आदि ने भाग लिया। रियासतों के राजनैतिक आन्दोलन अजमेर तथा ब्यावर से ही संचालित होते रहे। राजपूताना की वर्तमान राजनीति के कर्णधारों तथा कार्यकर्त्ताओं का किसी न किसी रूप में अजमेर से सम्बन्ध रहा है तथा उनमें से कितने ही तो यहां बरसों रहे भी हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी अजमेर-मेरवाड़ा का शासन केन्द्रीय सरकार एक चीफ कमिश्नर के द्वारा चलाती हैं जिसे अब एक सलाहकार कौंसिल देदी गई है इस कौंसिल के सदस्य सर्व श्री मुकुट बिहारीलाल भार्गव, बालकृष्ण कौल, अब्बास अली, कृष्णगोपाल गर्ग, किशनलाल लामरोर, सूर्यमल मौर्य्य तथा वजीरसिंह हैं।

अजमेर-मेरवाड़ा में इस्तमरारदारों की एक विशेष समस्या है। लगभग तीन चौथाई प्रान्त इस्तमरारी इलाका है। इस्तमरारदार अपने काश्तकारों से लगान व लागें वसूल करते हैं तथा सरकार को नाममात्र की मालगुजारी देते है। इनके अधिकार परम्परागत हैं तथा ये जमीन के मालिक माने जाते हैं, किसानों का उस पर कोई अधिकार नहीं होता। इस प्रथा को खतम करने की योजना बनायी जा रही है।
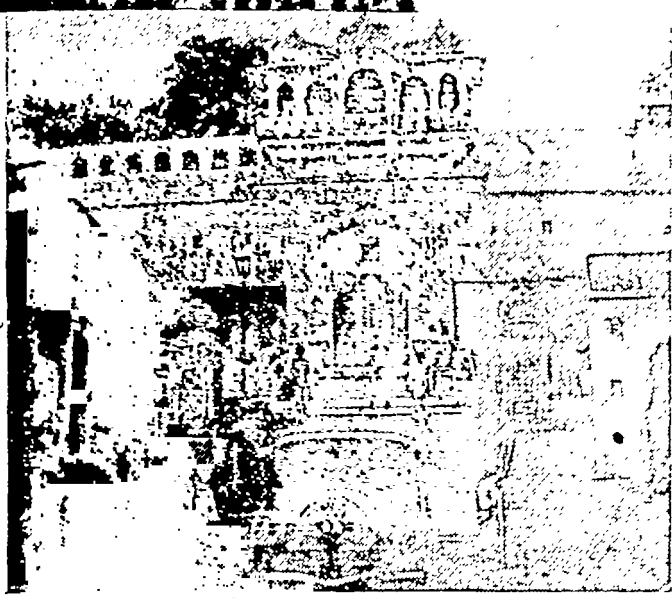
ब्रह्माजी का मन्दिर—पुष्कर

मेयो कालेज—अजमेर

इस प्रान्त में व्यापार और उद्योगों की कमी है। व्यावर और विजयनगर में कपड़े की मिलें हैं व्यावर भारत भर में ऊन की सब से बड़ी मंडी है। अजमेर में बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे की छोटी लाइन का बड़ा दफ्तर है तथा यहां रेल के इंजन तथा डिब्बे बनाने के दो बड़े कारखाने हैं। अजमेर में गोटा बहुत बनता है।

अजमेर-मेरवाड़ा का मुख्य नगर अजमेर है। यह एक घाटी के बीच में बसा हुआ है यहां की जलवायु बहुत अच्छी है तथा प्राकृतिक दृश्य रमणीय है।

ऐतिहासिक तथा दर्शनीय स्थान

पुष्कर—यह अजमेर से सात मील उत्तर-पूर्व में हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है। पुष्कर झील के चारों ओर पक्के घाट बने हुए हैं। यहां ब्रह्माजी तथा सावित्री के मन्दिर हैं और संसारभर में और कहीं नहीं हैं। रंगनाथ के पुराने तथा नये दो मन्दिर हैं तथा वराह का प्राचीन मन्दिर है। यहां कार्तिक की पूर्णिमा को पर्वस्नान का मेला भरता है। पुष्कर के पास ही बूढ़ा पुष्कर है।

ख्वाजा साहब की दरगाह—अजमेर में ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की की मशहूर दरगाह है। ख्वाजा साहब ग्यारहवीं शताब्दी में अफगानिस्तान से यहां आये थे। इनकी मृत्यु के बाद इनकी क़ब्र पर समय-समय पर इमारतें बनवाई जाती रहीं। दरगाह में अकबरी मस्जिद, शाहजहां की जुमा मस्जिद, बुलंद दरवाजा, बेगमी दालान, संदलखाना, महफिल ख़ाना आदि स्थान हैं। अकबर के समय के दो बड़े देग हैं जिनमें १०० मन चावल पक सकते हैं। रजब महीने की १ से ६ तारीख तक यहां बड़ा भारी उर्स होता है। दरगाह के प्रबन्ध के लिए सरकार ने 'दरगाह कानून' बना दिया है।

तारागढ़—इसे गढ़ बीटली भी कहते हैं। यह अजमेर के दक्षिण-पश्चिम में लगभग हज़ार फुट ऊंची पहाड़ी पर बना हुआ है। इसे अजयपाल ने बनवाया था। महमूद गजनवी ने सन् १०२४ ई० में इस पर हमला किया, पर वह इसे विजय न कर सका। तारागढ़ पहाड़ी समुद्र की सतह से लगभग ३,००० फुट की ऊंचाई पर है। यहां मीरां साहब की दरगाह है जो शिया मुसलमानों के प्रबन्ध में है।

ढाई दिन का झोपड़ा—अजमेर के राजा विशाल देव (वीसलदेव) का बनवाया हुआ यह मन्दिर स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट नमूना है। सन् ११९२ ई० में मोहम्मद गोरी ने इसे गिरवा कर मस्जिद के रूप में परिणत कर दिया। इसका नाम 'ढाई दिन का झोंपड़ा' इस कारण पड़ा बतलाया जाता है कि यहां

अकबर का किला अजमेर
[क्यूरेटर राज०म्यू० के सौजन्य से]

अजमेर में जहांगीर

मुसलमान फकीरों का ढाई दिन का उर्स हुआ करता था। इसके दर्वाजे पर कुरान की आयतें खुदी हुई हैं। इसके आंगन की खुदाई में कई प्राचीन मूर्त्तियां तथा शिलालेख मिले हैं।

आनासागर और बारादरियां—आनासागर का बांध राजा अरणोदेव (आना देव) ने सन् ११३५ ई० के लगभग बनवाया था। इसके पास जहांगीर ने अपने महल बनवाये जो अब खंडहर हो गये हैं। बांध के ऊपर शाहजहां ने संगमरमर की बारादरियां बनवाई।

मेगजीन तथा राजपूताना म्यूजियम--यह अजमेर नगर के बीच में है। इसे अकबर का किला भी कहते हैं। इसमें अकबर के महल बने हुए हैं, जहांगीर ने सर टामस रो को यहीं मुजरा दिया था। आजकल यहां राजपूताना म्यूजियम है जिसमें राजस्थान की स्थापत्य कला तथा मूर्तिकाल के नमूनों का दर्शनीय संग्रह है।

नसियां—सिद्धकूट चैत्यालय नामक जैन मन्दिर। यह मन्दिर वि० सं० १९२१ में सेठ मूलचन्द सोनी ने बनवाया था। मन्दिर के पीछे एक सुन्दर भवन में महावीर स्वामी के जन्म का दृश्य प्रतिपात्रों के द्वारा दर्शाया गया है।

मेओ कालेज—यह कालेज लार्ड मेओ के जमाने में राजकुमारों की शिक्षा के लिए स्थापित किया गया था। अब इसमें हर कोई प्रवेश पा सकता है। कालेज की इमारत तथा कोठियां, जो बड़े क्षेत्र में फैली हुई है, दर्शनीय हैं।

संस्थाएं—हटूंडी का महिला शिक्षा सदन, ब्यावर का जैन गुरुकुल तथा अजमेर का डी० ए० वी० कालेज प्रमुख शिक्षा संस्थायें हैं। देहात में ग्राम-सेवा मण्डल का सेवा-कार्य चल रहा है तथा इसके अन्तर्गत खादी के कई केन्द्र हैं।

आर्यसमाज की ओर से अजमेर में अनाथालय, कालेज, हाई स्कूल, आदि कई संस्थायें चलायी जा रही हैं।

आम्बेर (जयपुर)

जयपुर

जयपुर नगर अपनी सुन्दरता तथा कारीगरियों के लिए देश में ही नहीं बल्कि विदेशों तक में विख्यात है। यह जयपुर राज्य की राजधानी है जो राजपूताना में सब से घनी आबादी वाला तथा सम्पन्न प्रदेश है।

जिस प्रदेश में आजकल यह जयपुर राज्य है वह महाभारत काल में मत्स्य कहलाता था। जयपुर की तोरावाटी निज़ामत के बैराठ नामक कस्बे का जहां प्राचीन विराट नगर था, पहले ज़िक्र किया जा चुका है।

जयपुर का कछवाहा (कुशवाहा) राजवंश अपनी उत्पत्ति रामचन्द्र के पुत्र कुश से मानता है। ये सूर्यवंशी राजपूत हैं। अयोध्या के राजा लक्ष्मण ने वि० सं० ११२५ के लगभग ग्वालियर में अपने राज्य की स्थापना की तथा इसके वंशज लगभग आठ सौ वर्ष बाद दौसा आ गये। उस समय इस प्रदेश में मीणा लोगों के छोटे-छोटे राज्य थे। दौसा के राजाओं ने मुग़ल काल के प्रारम्भ में मुग़लों का डटकर मुकाबला किया तथा बाद में मीणों को पराजित करके अपनी राजधानी दौसा से बदल कर आम्बेर में बनायी।

अकबर के समय में जयपुर के राजा भारमल ने मुग़लों से मैत्री बनाये रखना श्रेयस्कर समझा तथा तब से जयपुर के शासकों ने मुग़लों से सम्बन्ध स्थापित किये तथा उन्हें हर प्रकार की सहायता दी। राजा भारमल के पौत्र मानसिंह बड़े वीर तथा प्रतापी हुए जिन्होंने मुग़ल साम्राज्य के विस्तार में बहुत बड़ा हिस्सा लिया। बंगाल से राजा मानसिंह शिलादेवी की मूर्ति लाये और उसे आम्बेर में प्रतिष्ठित किया।

मिर्जा राजा जयसिंह औरंगजेब के एक बड़े सेनापति थे जो शिवाजी से लड़ने के लिए भेजे गये थे। इनके पौत्र राजा सवाई जयसिंह हुए जिन्होंने मौजूदा जयपुर नगर बसाया।

राजा सवाई जयसिंह अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। फारसी तथा संस्कृत के बड़े विद्वान् होने के अतिरिक्त यह सिद्धांत ज्योतिष के बड़े पंडित थे। वास्तुकला का भी इनको अच्छा ज्ञान था! इन्होंने देश-विदेश के कलाकारों तथा विद्वानों को अपने यहां एकत्रित किया। ज्योतिषियों के परामर्श से इन्होंने सूर्य तथा चन्द्र के ग्रहणों और ग्रहों के उदय अस्त के अंतर का शोधन कराया। जयपुर के अतिरिक्त काशी, उज्जैन, दिल्ली तथा मथुरा में सूर्य, ग्रहों तथा नक्षत्रों की गतिविधि को नापने के लिए वेधशालायें बनवाई जो आज जन्तर-मन्तर के नाम से विख्यात हैं।

इन्होंने वि० सं० १७९१ (१७३४ ई०) में अश्वमेध यज्ञ का भी अनुष्ठान
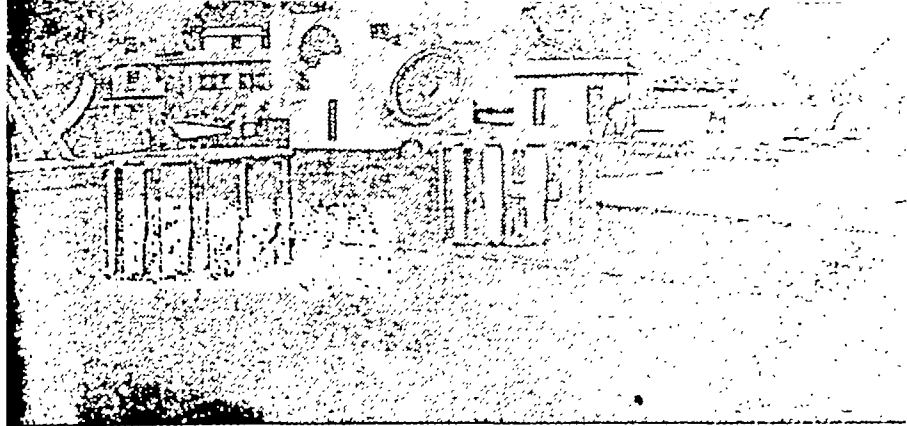
जंतर-मंतर—जयपुर

त्रिपोलिया—जयपुर

मोतीडूंगरी
जयपुर
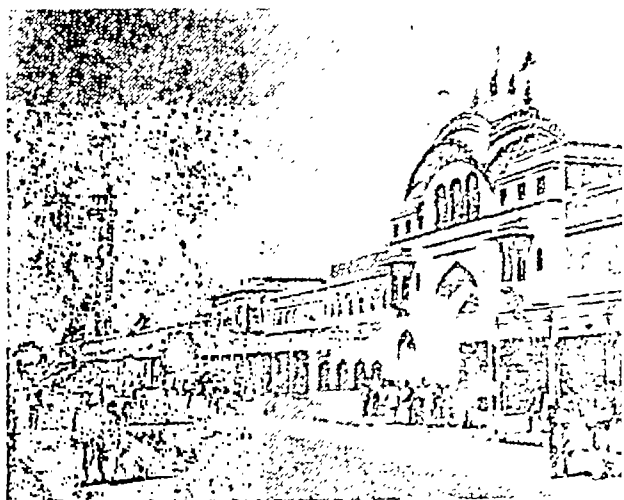
किया। सवाई जयसिंह के बाद छठवें राजा माधोसिंह ने जयपुर के सौंदर्य में वृद्धि की। इन्होंने कई सुन्दर इमारतें बनवाईं तथा अनेक लोकोपयोगी संस्थाएं स्थापित कीं। वर्तमान नरेश महाराज सवाई मानसिंह इन्हीं के गोद लिए हुए उत्तराधिकारी हैं।

जयपुर राज्य में राजनैतिक जागृति का सूत्रपात वर्तमान महाराजा की नाबालिगी के शासन में हुआ। इससे पूर्व जागीरी इलाकों में सेवा समितियां स्थापित हो चुकी थीं पर जागीरदारों को यह सहन न हुआ। खेतड़ी तथा सीकर आदि में इस सिलसिले में दमन भी हुआ। नाबालगी शासन से असंतुष्ट होकर जयपुर की जनता में एक साधारण-सी घटना को लेकर बड़ा रोष उमड़ा। पुलिस ने लोगों की भीड़ पर गोलियां चलाईं जिससे एक व्यक्ति की मृत्यु हुई तथा अनेक जख्मी हो गये। सारे नगर में हड़ताल हो गयी। अन्त में जनता की शिकायतों को दूर करने का आश्वासन दिया जाने पर शान्ति हुई।

सन् १९३१ ई० में स्व०श्री कर्पूरचन्द्र पाटणी आदि के प्रयत्नों से जयपुर में प्रजामंडल का जन्म हुआ। १९३७ ई० तक इसका काम कुछ शिथिल-सा चलता रहा। इसके बाद श्री हीरालाल शास्त्री तथा उसके साथियों ने प्रजा-मंडल का पुनर्सङ्गठन किया। सन् १९३८ ई० में प्रजामंडल का प्रथम वार्षिक अधिवेशन स्व० सेठ जमनालाल बजाज की अध्यक्षता में मनाया गया। दमन-कारी कानूनों के विरोध में प्रजामंडल ने सत्याग्रह का निश्चय किया। ३१ जनवरी १९३९ ई० को सेठ जमनालाल बजाज ने अपने ऊपर राज्य द्वारा लगाई गई पाबन्दी को तोड़कर जयपुर राज्य में प्रवेश किया; पर उन्हें गिरफ्तार करके मथुरा के पास छोड़ दिया गया। तीसरी बार पाबंदी तोड़ने पर उन्हें पकड़ कर मोरां में नज़रबन्द कर दिया गया। साथ ही अन्य कार्यकर्त्ताओं की गिरफ्तारियां भी की गई और दमन का दौर शुरू हुआ। पर अन्त में राज्य को प्रजामंडल से समझौता करना पड़ा।

प्रजामंडल ने इसके बाद जागीरी अत्याचारों के विरुद्ध आंदोलन किया जिससे किसानों में जागृति फैलाने लगी! शेखावाटी के किसानों ने श्री हरलाल सिंह आदि के नेतृत्व में ज़बरदस्त आंदोलन किया और उसे लाठियों और गोलियों से दबाया गया।

सन् १९४२ ई० में धारा सभाएं स्थापित की गईं परन्तु प्रजामंडल ने इसका बायकाट किया। सन् १९४६ ई० के बाद प्रजामंडल के प्रतिनिधि
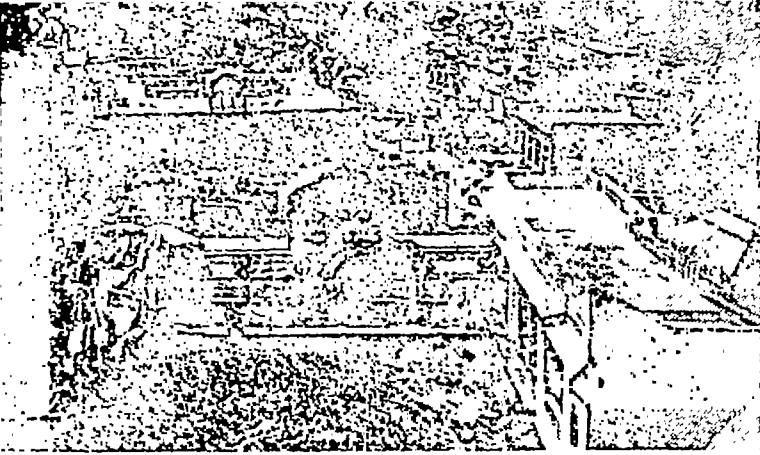
गलता
जयपुर
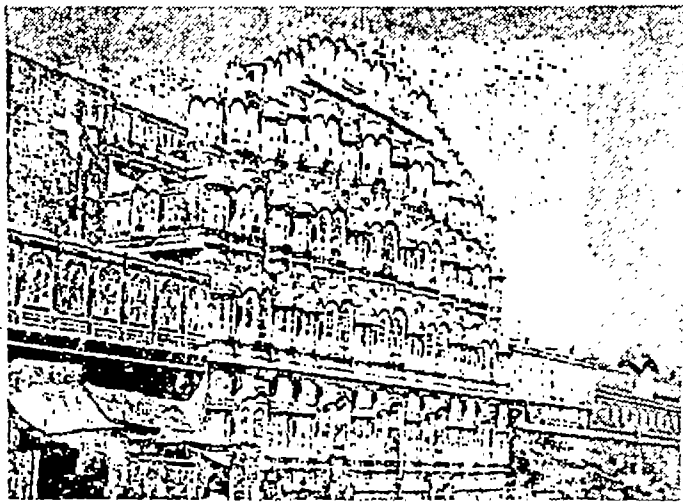
हवामहल—जयपुर
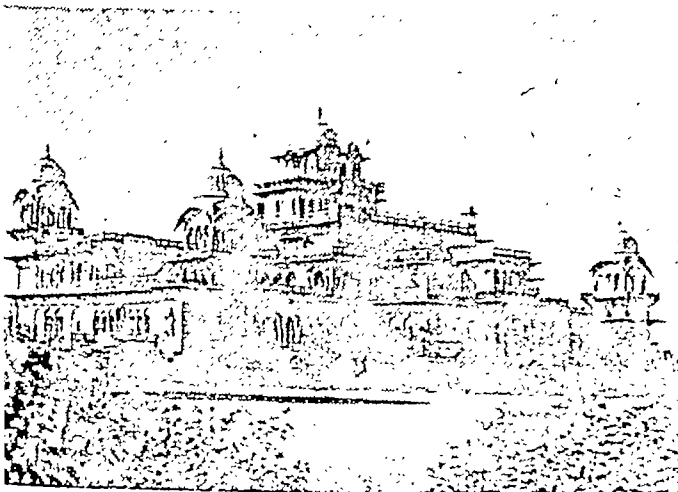
अजायबघर
जयपुर

मन्त्रिमण्डल में लिये गये। सन् १९४७ ई० में जयपुर नरेश ने अपनी रियासत को भारतीय-संघ में शामिल करने की घोषणा की। मार्च १९४८ में पुराने मन्त्रिमंडल के स्थान पर नया मंत्रिमंडल कायम किया गया जिनमें प्रजामण्डल के चार प्रतिनिधि हैं। पूरा लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल अभी कायम नहीं हुआ है, परन्तु वर्तमान मन्त्रिमण्डल संयुक्त दायित्व के आधार पर कार्य कर रहा है।

मन्त्रिमण्डल

श्री वी० टी० कृष्णामाचार्य—दीवान और सभापति; श्री हीरालाल शास्त्री—मुख्य सचिव; श्री देवीशङ्कर तिवारी, श्री दौलतमल भण्डारी, श्री टीकाराम पालीवाल तथा टा० कुशलसिंह।

विशेषताएं

जयपुर राज्य की जयपुर स्टेट रेलवे नामक अपनी रेल है तथा अन्दरूनी डाक विभाग भी है जिसमें राज्य के ही स्टाम्प चलते हैं। पोस्टकार्ड का महसूल एक पैसा तथा लिफाफे का तीन पैसा है।

जयपुर में राजपूताना विश्वविद्यालय का केन्द्र है। यहां का सवाई मानसिंह अस्पताल राजपूताना भर में अपने ढंग का सबसे बड़ा अस्पताल माना जाता है। यहां एक संस्कृत कालेज तथा एक दस्तकारियों का स्कूल है। मेडिकल कालेज भी खोल दिया गया है जो राजपूताना में एक ही है। जयपुर राज्य में चरखा संघ का भी एक बड़ा केन्द्र है जहां लाखों रुपये की खादी तैयार होती है।

जयपुर नगर

अपनी भव्यता तथा सुन्दरता के लिए जयपुर नगर सारे भारत के नगरों में बेजोड़ माना जाता है और इसे 'भारत का पेरिस' ठीक ही कहा गया है।

जयपुर की सड़कें अपनी चौड़ाई तथा सीधाई के कारण प्रसिद्ध हैं। सब रास्ते एक दूसरे को समकोण पर काटते हैं। बाज़ार की दूकानों और मकानों की बनावट भी लगभग एक-सी है और सबका रंग भी एक ही-गेरुआ-है। नगर के चारों ओर परकोटा है जिसमें आठ दरवाज़े हैं। परकोटा के बाहर भी नगर फैल गया है तथा इसके विस्तार की योजनाएँ अमल में आ रही हैं। सदर बाज़ार लगभग दो मील लम्बा तथा ४० गज़ चौड़ा है तथा इसमें तीन चौपड़ हैं।

जयपुर नगर की नींव राजा सवाई जयसिंह ने पौष ८, सं० १७८४ (२५ नवम्बर १७२७ ई०) को रक्खी थी।

कला-कौशल

जयपुर राज्य और विशेषकर जयपुर नगर कला और दस्तकारियों का एक
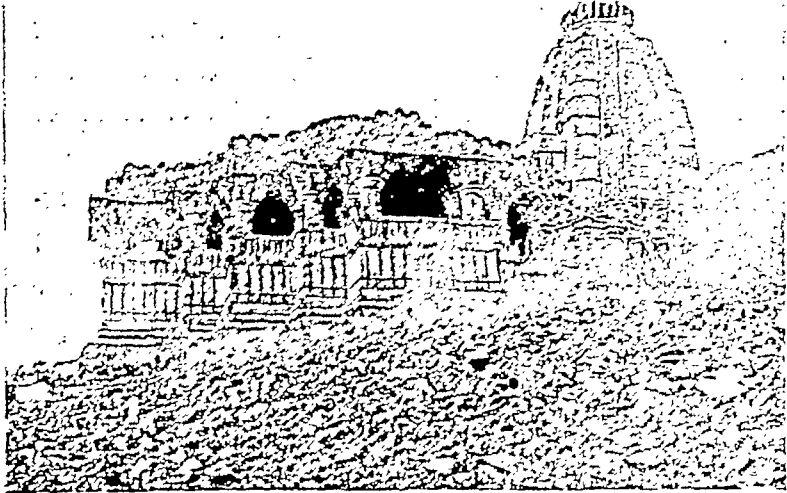
वीसलदेव का मन्दिर—जयपुर राज्य

बड़ा केन्द्र है। यहां जवाहरात की तराशी करने और उनपर सान रखने वाले कुशल कारीगर हैं। इस कार्य के लिए विदेशों तक से जवाहरात यहां भेजे जाते हैं। चांदी और सोने पर मीने का सुन्दर काम यहां होता है। पीतल के बरतन और सजावट की वस्तुएँ; हाथी दांत, चन्दन और कुट्टी के खिलौने संगमरमर और पत्थर की मूर्त्तियां, लकड़ी और लाख का सामान, गोटा, जरी, जूते, दरी, गलीचे आदि जयपुर की कारीगरी के नमूने पेश करते हैं। सांगानेर में हाथ का कागज़ बनता है और यहां भी कपड़े की छपाई मशहूर है। सवाई माधोपुर में खस का इत्र, डिब्बे और पंखे बनते हैं। ऊन की लोहियां और लकड़ी का सामान भी कई जगह अच्छा बनता है।

उद्योग-धन्धे

देश के बहुत से प्रमुख मारवाड़ी व्यापारी तथा उद्योगपति जयपुर राज्य के निवासी हैं। अब इनका ध्यान अपनी जन्म भूमि की ओर भी आकृष्ट हुआ है। कपड़े और धातुओं का सामान तैयार करने के कारखाने खुल गये हैं। अब सीमेन्ट और लोहे की गोलियां बनाने के कारखाने खोले जाने वाले हैं। काच और चीनी के सामान के कारखानों की योजना भी सामने है।

दर्शनीय स्थान

जयपुर में—पुराने तथा नये राजमहल, जन्तर-मन्तर, पुराना घाट, गलता (गलताश्रम), हवामहल, तथा रामनिवास बाग दर्शनीय स्थान हैं। महलों के पोथी खाने में प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थों का संग्रह है, तथा सिलह खाने

में पुराने हथियारों का। रामनिवास बाग में जन्तुशाला है। जयपुर म्यूज़ियम भी रामनिवास बाग में है। इसकी इमारत राजपूताना की कला का उत्कृष्ट नमूना है। यह अजायबघर राजपूताना में सबसे बड़ा है तथा इसमें देश-विदेश की वस्तुओं का अच्छा संग्रह है। पुराने घाट में पुरातत्व विभाग का संग्रहालय है।

आम्बेर—शहर से छः मील दूर पहाड़ी पर यह जयपुर की पुरानी राजधानी है। यहां के महल राजपूत युग की स्थापत्य कला के सुन्दर नमूने हैं। गणेश पोल नामक दरवाज़ा बहुत कारीगरी से बनाया गया है। यहां शिला देवी तथा जगत शिरोमणि के प्रसिद्ध मन्दिर हैं।

बेराठ—यह जयपुर-दिल्ली सड़क पर एक कस्बा है जहां खुदाई में एक गोलाकार बौद्ध चैत्य तथा अशोक के दो शिलालेख मिले हैं।

हर्षनाथ का मन्दिर—यह शेखावाटी में सीकर के पास है। यह मन्दिर ११ वीं शताब्दी का है। इसमें अनेक मूर्त्तियां तथा शिलालेख हैं।

सांगानेर का जैन मन्दिर—इसमें पच्चीकारी का बहुत अच्छा काम है

रण थम्भोर—यह पुराना किला ऐतिहासिक दृष्टि से चित्तौड़ की तरह ही प्रसिद्ध है।

सांभर—सांभर में नमक की प्रसिद्ध सांभर झील है तथा देवयानी का पुराना मन्दिर है। देवयानी के तालाब में गांधी जी की भस्म का कुछ भाग डाला गया था।

संस्थायें

पिलानी में बिड़ला एज्युकेशन ट्रस्ट द्वारा संचालित शिक्षा का बड़ा भारी केन्द्र है। यहां बच्चों का स्कूल, लड़कों तथा लड़कियों के कालेज, तथा इंजीनियरिंग कालेज है।

जयपुर से लगभग ४० मील दूर वनस्थली में प्रसिद्ध वनस्थली विद्यापीठ है जहां कन्याओं को सर्वांगीण शिक्षा दी जाती है। यहीं कस्तूरबा विद्यालय है जिसमें कार्यकर्त्रियों को ट्रेनिंग दी जाती है। यह संस्था राजपूताना में अपने ढंग की एक ही है।

गोविन्द गढ़ में चर्खा संघ का खादी उत्पत्ति तथा सरंजाम का बहुत बड़ा केन्द्र है।

जैसलमेर का किला

जैन तमेर
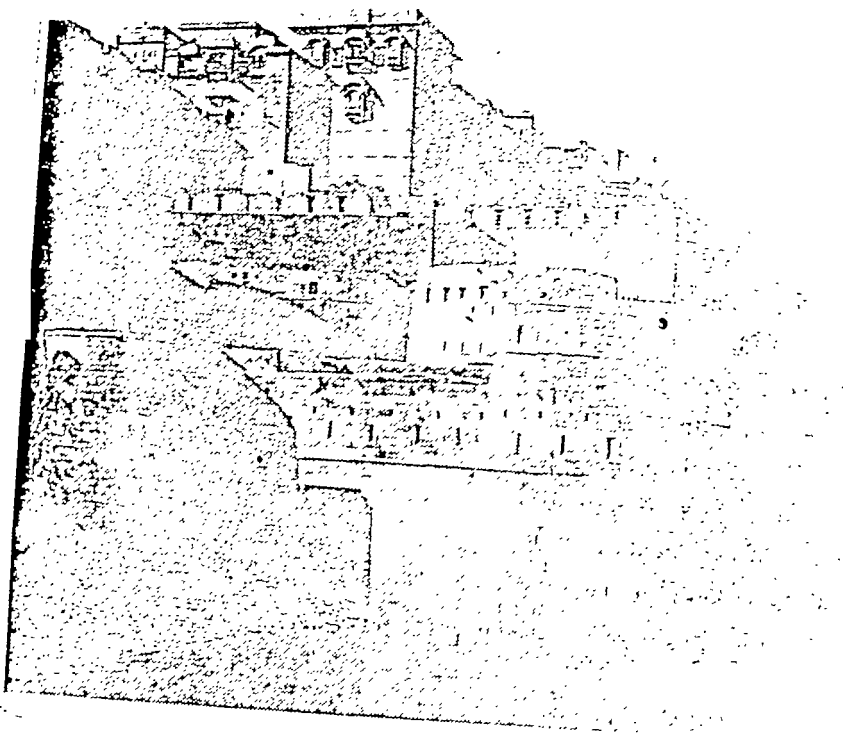
क्षेत्रफल की दृष्टि से जैसलमेर राजपूताने की बड़ी रियासतों में से एक है, किन्तु मरुप्रदेश होने के कारण यहां की जन-संख्या एक लाख से भी कम है। जहां कहीं पानी मिल जाता है, वहीं गांव बस गये हैं और निवासी, जो अभी मध्यकाल में ही रह रहे हैं, भेड़-बकरी, गायें, ऊँट आदि पशु पाल कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। जैसलमेर की पश्चिमी सीमा पाकिस्तान को छूती है, इस कारण यह रियासत बहुत महत्वपूर्ण है।

सन् ११२२ ई० में महाराजा जैसल ने अपने नाम से जैसलमेर राज्य की नींव डाली और रेगिस्तान के लम्बे भू-भाग पर अपना अधिकार जमाया। रेगिस्तान पर कब्जा होने के बाद महाराजा जैसल ने पञ्जाब में भी अपनी जीत का डंका बजाया, जहां कि आज पटियाला, नाभा और कपूरथला की रियासतें हैं। महाराजा जैसल के बाद महारावल भीमसिंह जिन्होंने अकबर के समय में नौरोजे के लिए आन्दोलन किया और सफलता पाई, उल्लेखनीय है। महाराजा अमरसिंह व अखेसिंह भी यशस्वी राजा हुए हैं। प्राचीन काल में हुआ अलाउद्दीन खिलजी का युद्ध मुख्य उल्लेखनीय व ऐतिहासिक है। इस राज्य ने सन् १८१८ ई० में अंग्रेजों से सन्धि की है और तब से ही यह इकाई के रूप में रही और यहां के पूर्ण रूप से निरंकुश शासन रहा।

राजनैतिक जागृति

यहां का राजनैतिक जीवन तो वैसे १९२१ से ही प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु सरकार ने हमेशा इसको कुचलने का प्रयत्न किया। लोगों पर अत्याचार किये गये तथा राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के साथ अमानुषिक अत्याचार, दमन आदि का प्रयोग किया गया और इसकी सीमा यहाँ तक बढ़ी कि श्री सागरमल गोपा को जेल में ही सान्देग्ध अवस्था में मौत का शिकार बनना पड़ा।

पाकिस्तान की सीमा पर स्थित होने के कारण जैसलमेर का राजनैतिक महत्व बहुत बढ़ गया है। कुछ दिन पूर्व पाकिस्तानी सीमा पर पठानों का उपद्रव भी हो चुका है। इस कारण केन्द्रीय सरकार ने यहाँ का शासन प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया है और एक दीवान नियुक्त करके भेज दिया है।

दर्शनीय स्थान

जैसलमेर—जैसलमेर शहर के लिए सबसे पास का रेलवे स्टेशन जोधपुर रेल्वे का बाड़मेर है। जो यहां से १०० मील है। यात्रियों को ऊँट व मोटर की सवारी से कच्चे रास्ते से जाना होता है। शहर के चारों ओर करीब तीन मील घेरे का ५ से ७ फुट चौड़ा और १० से १५ फूट ऊंचा पत्थर का पक्का

परकोटा है। परकोटे के भीतर ही एक पहाड़ी पर आधमील क्षेत्रफल वाला किला है जो आसपास की भूमि से २५० फुट ऊंचा है। किला बड़ा सुन्दर बना हुआ है और इसके चारों ओर ९९ बुर्ज हैं। किले में ही सर्वोत्तम विलास, रंग महल (रंगपोल), गजविलास और मोती महल नामक राज-प्रासाद है। जैसलमेर जैनियों का तीर्थ स्थान हैं। मन्दिर काफी पुराने हैं। मंदिरों की कारीगरी बड़ी उत्तम है। जैसलमेर की पत्थरों की कारीगरी प्रसिद्ध है।

जैसलमेर में प्राचीन और हस्तलिखित ग्रन्थों का एक विशाल पुस्तकालय था, किन्तु मुसलमानों के आक्रमण के समय उसे नष्ट कर दिया गया।

लुद्रवा पाटन—जैसलमेर की प्राचीन राजधानी रहा है और जैनियों का भव्य तीर्थ स्थान हैं। यहां प्राचीन किला, उसके महल, जवाहर विलास, पटवों की हवेलियाँ आदि दर्शनीय हैं।
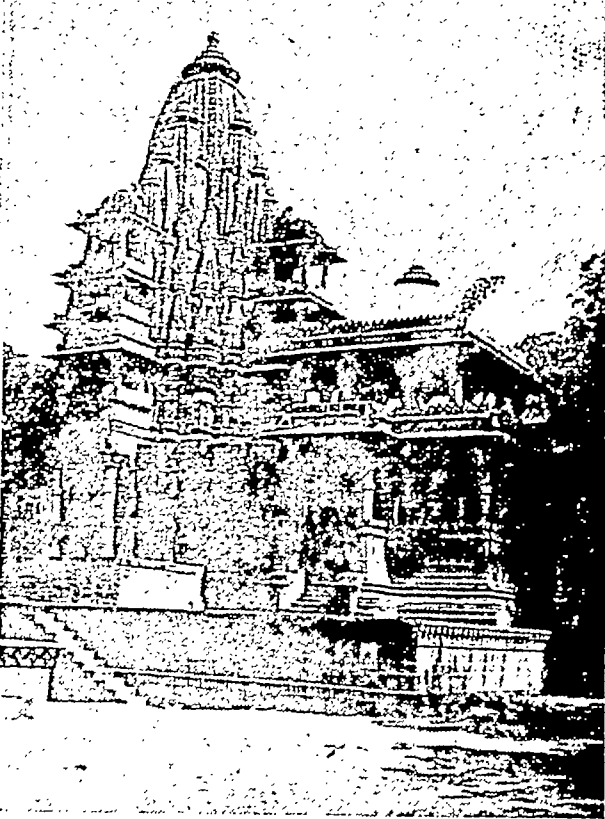
अजीतसिंह का देवल
मंडोर (जोधपुर)

वीरशाला—मंडोर (जोधपुर)
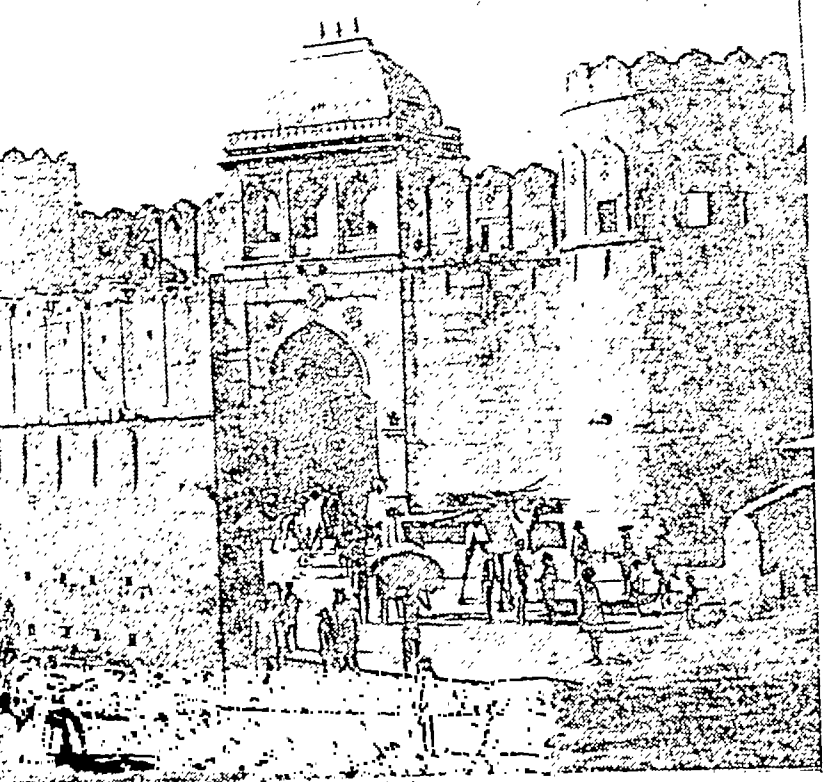
मेड़ती दरवाजा—जोधपुर

जोधपुर

क्षेत्रफल की दृष्टि से जोधपुर राजपूताना की रियासतों में सबसे बड़ी है। पाकिस्तान की सीमा पर स्थित होने के कारण आज इस रियासत का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है।

जोधपुर के नरेश राठौड़ राजपूत हैं और अपने को सूर्यवंशी कहते हैं। राठौड़ों की राजधानी पहले कन्नौज थी। किन्तु जब मुहम्मद गोरी ने उस पर अधिकार कर लिया, तो जयचन्द के पौत्र सिंहाजी ने द्वारका जाते हुए पाली के निकट अपना डेरा जमाया। सन् १३६४ ई० में मंडोर का किला जीत कर चंड ने मारवाड़ में राठौड़ों का प्रभुत्व जमा लिया।

सन् १४५६ ई० में राव जोधाजी ने जोधपुर नगर की नींव डाली। उनके एक पुत्र राव बीका जी ने बीकानेर की संस्थापना की। इस वंश में राव मालदेव बहुत प्रतापी नरेश होगये हैं। उनके लड़के राव चन्द्रसेन ने सम्राट् अकबर की अधीनता स्वीकार करने से इंकार कर दिया।

जोधा जी से नवीं पीढ़ी पर जसवन्त सिंह ने सबसे पहले महाराजा की उपाधि ग्रहण की। महाराजा मानसिंह ने सन् १८१८ ई० में ब्रिटिश सरकार से सन्धि करली। वर्तमान नरेश महाराजा हनवन्तसिंह इस वंश के छत्तीसवें राजा हैं, जो अपने पिता महाराजा उम्मेदसिंह की मृत्यु पर २१ जून १९४७ को गद्दी पर बैठे।

जोधपुर में जन जागृति का आरम्भ सन् १९१८ ई० से ही प्रारम्भ हो गया था। श्री भँवरलाल सर्राफ के प्रयत्न से सन् १९२० ई० में दिवाली के अवसर पर मारवाड़ सेवासंघ की स्थापना हुई। अनेक व्यक्तियों ने रेलगाड़ियों के आगे लेट लेट कर सत्याग्रह किया। बहुत-से आदमियों को लम्बी-लम्बी सज़ायें दी गयीं, पर आन्दोलन न कुचला जा सका और सरकार को जनता की मांगों के आगे झुकना पड़ा।

सन् १९२४ ई० में महाराजा और महारानी के विलायत जाने पर भी सत्याग्रह किया गया। अनेक कार्यकर्ता जोधपुर से निर्वासित कर दिए गये। इसी बीच में मारवाड़ी हितकारिणी सभा की स्थापना हुई और उसने असंगठित होते हुए भी नगर में सम्पूर्ण हड़ताल कराने का साहस किया। सन् १९२२ ई० में श्री जयनारायण व्यास इस सभा के मंत्री चुने गये तथा काम की प्रगति बढ़ाई गई। सन् १९२९ में सभा की ओर से मारवाड़ प्रजा-परिषद बुलाने का विचार किया परन्तु राज्य ने इसका अधिवेशन नहीं होने दिया। कुछ दिन बाद श्री जयनारायण व्यास, श्री आनन्दराज सुराणा तथा श्री भँवरलाल सर्राफ राजद्रोह में गिरफ्तार कर लिये गये। सन् १९३१ ई० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में
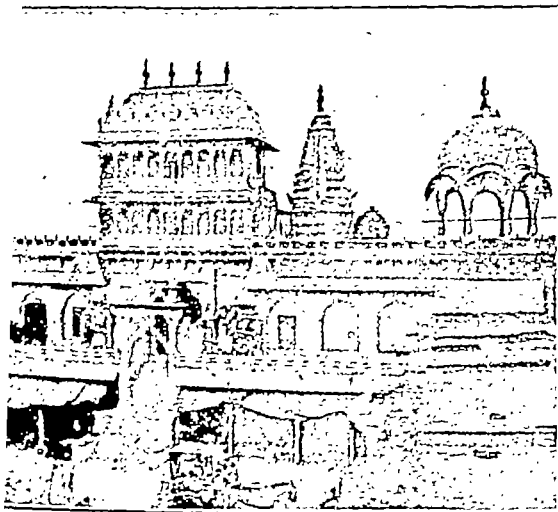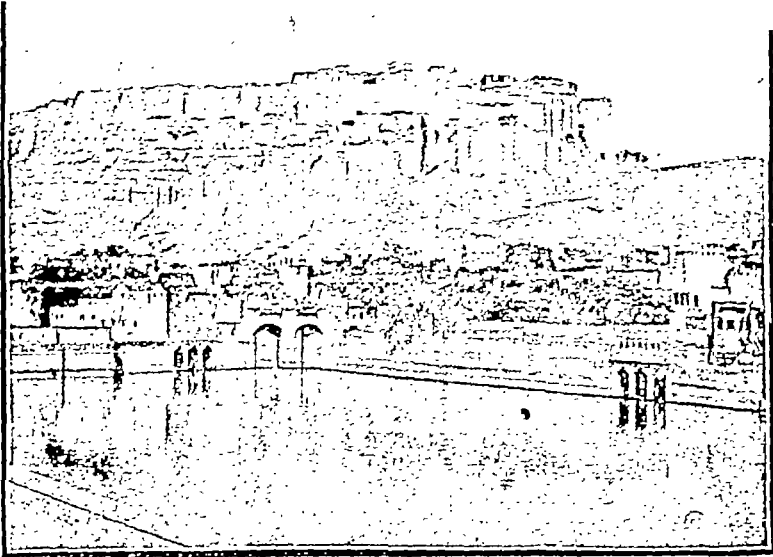
कुंजविहारी का मंदिर-जोधपुर
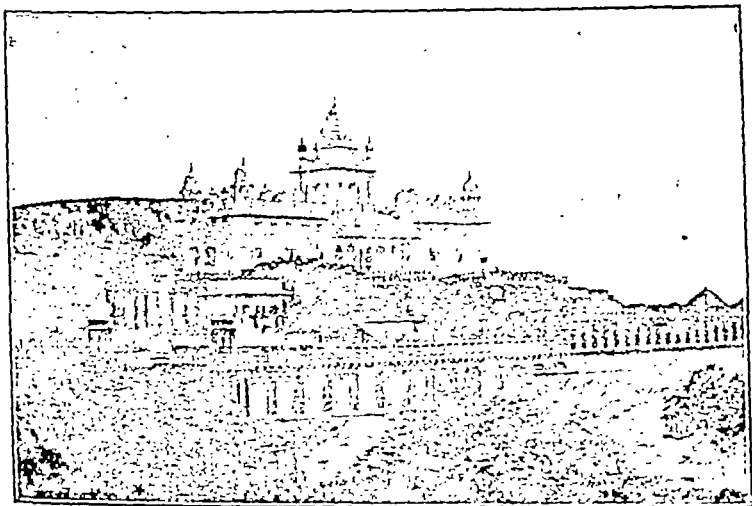
—जोधपुर

श्री व्यास आदि जोधपुर के कई कार्यकर्त्ताओं ने अजमेर में जाकर भाग लिया। जोधपुर में श्री अचलेश्वरप्रसाद शर्मा को छै महीने के लिये नज़रबन्द किया गया।

सन् १९३४ ई० में जोधपुर राज्य प्रजामंडल स्थापित किया गया और श्री भँवरलाल सर्राफ उसके पहले अध्यक्ष बनाये गये। राज्य की तालाबन्दी की नीति के विरोध करने के कारण सर्व श्री मानमल जैन, अभयमल जैन और छगनराम चौपासनी वाला को नज़रबन्द कर दिया गया।

सन् १९३८ ई० में मारवाड़ लोक परिषद् स्थापित हुई तथा इसकी बाग-डोर श्री जयनारायण व्यास ने हाथ में ली। सन् १९४० से सन् १९४५ तक के समय में लोक-परिषद को सरकार से कई बार संघर्ष करना पड़ा। सन् १९४५ ई० में पं० जवाहरलाल नेहरू जोधपुर आये तो उनका खूब स्वागत किया गया जिसमें राज्य ने भी सहयोग दिया।

मारवाड़ का बहुत सा भाग जागीरी है। पोकरण ठिकाने की जनता ने सब से पहले सन् १९३९ ई० में जागीरदार के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी। इसके फलस्वरूप जागीरदार को बहुत से कर तथा लागें छोड़नी पड़ीं। सन् १९४२ ई० में सारे मारवाड़ में उत्तरदायी शासन दिवस मनाया गया। चंडावल में कार्यकर्त्ताओं पर जागीरदारों के आदमियों ने लाठियों तथा भालों से हमला किया, परिषद् ने चंडावल कांड की जांच का निश्चय किया परन्तु सभाओं पर रोक लगा दी गई। समझौते की बातचीत भंग होने पर गिरफ्तारियां शुरू हो गईं। जेल में राजनैतिक कैदियों के साथ दुर्व्यवहार किया गया गया। इस पर अनशन किये गये तथा श्री बालमुकन्द बिस्सा की जेल के कष्टों के कारण मृत्यु हो गई।

सन् १९४४ ई० में एक व्यवस्थापक सभा की घोषणा की गई परन्तु परिषद् ने इसका बहिष्कार कर दिया। सन १९४७ ई० जोधपुर नरेश भारतीय संघ में शामिल हो गये तथा राज्य की ओर से श्री जयनारायण व्यास को भारतीय विधान सभा का सदस्य बनाया गया। राज्य शासन को लोकप्रिय बनाने की बातचीत चलती रही और अन्त में समझौता हो गया जिसके फलस्वरूप श्री व्यास को प्रधान-मन्त्री बनाया गया। परन्तु मन्त्रिमंडल में कोई परिवर्तन नहीं किया गया। सितम्बर १९४८ ई० में मन्त्रिमंडल का दुबारा संगठन किया गया तथा उसमें परिषद् के तीन प्रतिनिधि और शामिल किये गये और उसे शासन के पूरे अधिकार दिये गये।

मन्त्रिमंडल

श्री पी० एस० राव दीवान

श्री जयनारायण व्यास, प्रधान-मन्त्री

श्री मथुरादास माथुर

श्री द्वारका प्रसाद पुरोहित

श्री नाथूराम मिश्रा

रावराजा हनूतसिंह

ले० कर्नल बहादुर सिंह

योजनाएं

राज्य की ओर से जवाई नदी पर बांध बनाकर सिंचाई तथा बिजली की एक विशाल योजना अमल में लाई जा रही है। इसमें दो करोड़ से अधिक रुपया खर्च होगा। एक ग्राम सुधार केन्द्र भी चलाया जा रहा है।

जोधपुर में पुरातत्व विभाग का अच्छा संग्रहालय है। राज्य की अपनी रेलवे लाइन है जो जोधपुर स्टेट रेलवे कहलाती है। इसका कुछ हिस्सा पाकिस्तान में चला गया है। नमक से सोडियम सल्फाइड बनाने का एक कारखाना राज्य में खुला है। कांच और चीनी के सामान बनाने का कारखाना भी खोला जा रहा है।

दर्शनीय स्थान

जोधपुर—यह रियासत की राजधानी और एक सुन्दर नगर है। इसके चारों ओर परकोटा खिंचा हुआ है और प्रवेश करने के लिए सात द्वार बने हैं। यहां पर दर्शनीय स्थान निम्न हैं:—

किला—यह एक चारसौ फीट ऊँचो पहाड़ी पर बना हुआ है। इसके भीतर महल, शस्त्रागार, पुस्तकालय, चित्रशाला आदि दर्शनीय हैं। यहाँ प्राचीन कला के अनेक नमूने भी सुरक्षित हैं। किले के पास ही संगमरमर का बना जसवन्त थाड़ा देखने योग्य स्थान है।

सार्वजनिक बाग—यह मेड़ती दरवाजे के बाहर स्थित है। यहाँ जन्तुशाला, पुस्तकालय तथा अजायबघर हैं।

गोरा धाय की छतरी—यह सार्वजनिक बाग के पास बनी हुई है और गोरा धाय का स्मारक है, जिसने बालक अजीतसिंह की औरंगजेब के हाथों से रक्षा की थी।

राई का बाग—यह राजकीय दफ्तरों के पास महाराजा साहब का महल है। वर्तमान महाराजा यहीं निवास करते हैं।

उम्मेद भवन—छीतर पहाड़ी पर बना हुआ यह महल भारत के इनेगिने राजमहलों में से है। यह पूर्णतया पीले पत्थर का बना है।

रातानाडा महल—यह स्टेशन से लगभग डेढ़ मील दूर स्थित है। राजकीय अतिथि यहीं ठहरते हैं।

हवाई मैदान—भारत के प्रथमश्रेणी के हवाई मैदानों में इसकी गिनती है। यहाँ हवाई चालकों की शिक्षा के लिए एक स्कूल भी है। इनके अतिरिक्त जसवंत कालेज, विंढ़म अस्पताल, उम्मेद अस्पताल आदि देखने योग्य स्थान हैं।

मंडोर—जोधपुर की स्थापना से पूर्व यह मारवाड़ की राजधानी रहा है। यह जोधपुर स्टेशन से पाँच मील दूर पर और बालसमन्द के पास स्थित है। अब यह शहर प्रायः उजाड़ हो गया है। इसके तोरण के कुछ भग्नावशेष चौथी शताब्दी के मिले हैं जिन पर कृष्णलीला खुदी हुई है।

यहां एक विशाल और रमणीय बाग है। मुख्य महल के पास ही एक कमरे में सोलह पत्थरों पर खुदी मारवाड़ के प्रसिद्ध वीरों की मूर्तियाँ स्थापित हैं। ये सब अठारहवीं शताब्दी की हैं। बाग में पहले राजाओं पर बनी छत्रियाँ भी हैं जिनमें सबसे प्रसिद्ध देवल महाराजा अजीतसिंह की है। जोधपुर की वस्तु-कला का यह एक उत्कृष्ट नमूना है।

पहले मंडोर में राजकीय श्मशान भूमि भी थी, पर अब वह जसवन्त बाड़े के पास कर दी गई है। वर्षा ऋतु में मंडोर की शोभा बहुत बढ़ जाती है।

जोधपुर और मंडोर के अतिरिक्त मारवाड़ में नागोर, मेड़ता, पाली, बाली आदि दर्शनीय स्थान हैं।

बीकानेर
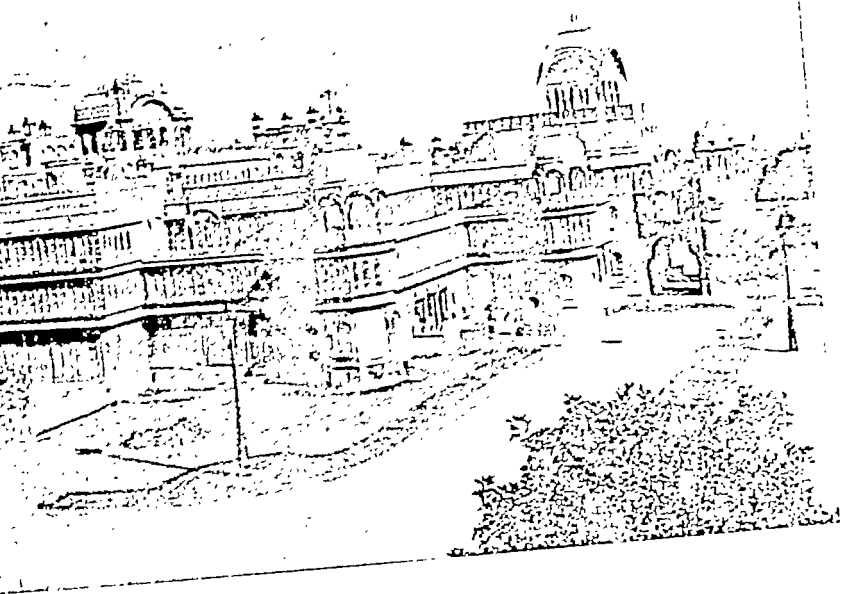
बीकानेर की रियासत राजपूताने के उत्तर-पश्चिम में स्थित है। रियासत की १७६ मील लम्बी सीमा पाकिस्तान से मिली होने के कारण इसका राजनैतिक महत्त्व काफी बढ़ गया है।

बीकानेर में काफी समय तक जाट गणतंत्रों का शासन रहा है। बाद में जोधपुर के राठौड़ राजकुमार राव बीकाजी ने वहाँ पहुँच कर गणतंत्रों का दमन किया और एकतंत्र की नींव डाली। बीकानेर नगर भी उन्हीं का बसाया हुआ है। मुगल साम्राज्य से बीकानेर नरेशों के सम्बन्ध काफी अच्छे रहे हैं। यहाँ के नरेशों में महाराजा सरदारसिंह और महाराजा गंगासिंह के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। महाराजा गंगासिंह के समय में राज्य ने काफी उन्नति की। रेल, तार, नहरें, बन्ध, स्कूल, कालेज, पुस्तकालय आदि की स्थापना और इनके शासन काल में हुई। ये नरेन्द्र-मंडल के चान्सलर भी रहे। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र श्री शार्दूलसिंह गद्दी पर बैठे, जो बीकानेर के वर्तमान नरेश हैं।

राजनैतिक जागृति

बीकानेर में राजनैतिक आन्दोलन की शुरुआत महाराजा गंगासिंह के समय में हुई। नागरिक स्वतंत्रता के अपहरण, निरंकुश शासन तथा जागीरदारों के अत्याचारों से प्रजा में विरोधी शक्ति उत्पन्न हुई जिसने महन्त गोपालदास, श्री खूबराम सराफ आदि को प्रेरित किया। सरकार ने इन लोगों पर देशद्रोह का भारी अभियोग चलाया। जिसकी तुलना हिन्दुस्तान में अंग्रेज सरकार की ओर से देश-भक्तों पर चलाये जाने वाले अभियोगों से की जा सकती है। स्व० बाबू मुक्ताप्रसाद वकील ने अभियुक्तों की ओर से पैरवी की, इसलिए अभियुक्तों को लम्बी सजाएं देने के उपरान्त उन्हें भी देश निकाला दे दिया गया।

इसके बाद सन् १९४२ में श्री रघुवरदयाल गोयल ने थोड़े से साथियों के साथ प्रजा परिषद् स्थापित किया पर कुछ ही दिन बाद श्री रघुवरदयाल जी गोयल को निर्वासित कर दिया गया। निर्वासन की आज्ञा भंग करने पर इन्हें एक साल की सज़ा दी गई।

सन् १९४५ ई० में जागीरदारों के अत्याचारों के विरुद्ध दूधवाखारा का किसानवर्ग उठा तो सरकार ने दबाने के लिए दमनचक्र चलाया। चौधरी तुलाराम जो पुलिस में सब-इन्सपेक्टर थे, नौकरी छोड़ प्रजा-परिषद् में आ गये। राजगढ़ में राष्ट्रीय झंडा लेकर किसानों की ओर से दमन का विरोध करने पर लाठियें चलाई गईं तथा कई कार्यकर्त्ता गिरफ्तार किये गये। रायसिंह नगर में भी गोलियां चलाई गईं जिन से श्री बीरबलसिंह की मृत्यु हो गई।

ंगा निवास—बीकानेर
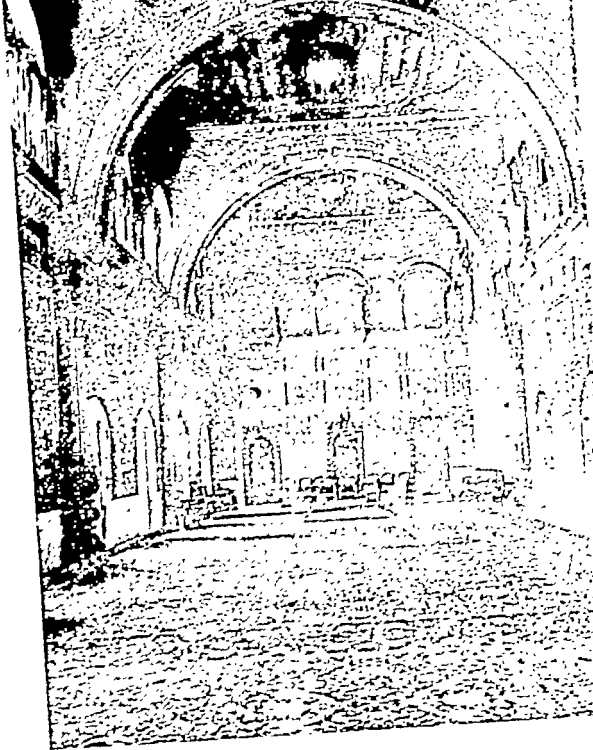
सूर सागर--बीकानेर

चौ० हरदत्तसिंह जो न्याय विभाग में मुन्सिफ थे, अपना पद छोड़कर आन्दोलन में शरीक हो गये और उन्हें भी जेल भेज दिया गया। रियासत में सर्वत्र १४४ धारा लगा दी गई किन्तु फिर भी जनता नहीं दबी। राजगढ़ के वीर किसानों ने सरकार को चुनौती दी। सैंकड़ों किसान जेल भेजे गये। हजारों पुरुषों तथा स्त्रियों को गिरफ्तार करके दूर जंगलों में छोड़ा गया।

अगस्त १९४७ ई० में हिन्दुस्तान के आजाद होने पर भी बीकानेर के शासन में परिवर्तन नहीं हुआ। कार्यकर्त्ताओं ने जेल से छूटकर सरकार को संघर्ष की चुनौती दी। हजारों स्वयंसेवक भर्ती किये गये। नवम्बर १९४७ में सब कार्यकर्त्ताओं को छोड़ दिया गया तथा महाराजा ने समझौता समिति के लोगों से बातचीत प्रारम्भ की। इसके फलस्वरूप महाराजा ने बराबरी के आधार पर अन्तःकालीन सरकार बनाने की घोषणा की। अतः श्री हरदत्तसिंह जी उप प्रधान-मंत्री बनाये गये तथा श्री गौरीशंकर आचार्य, श्री मस्तानसिंह तथा श्री कुम्भाराम मंत्रिमंडल में लिये गये।

१८ मार्च १९४८ को मंत्रियों ने शपथ ग्रहण कर ली। परन्तु प्रजा-परिषद् की प्रतिनिधि-सभा ने इस समझौते को मंजूर नहीं किया। मंत्रियों ने स्तीफे पेश कर दिये परन्तु जयनारायण व्यास की मध्यस्थता से फिर समझौता हो गया और मंत्रि-मंडल बदस्तूर कायम रखकर सितम्बर में चुनाव लड़ने का फैसला हुआ।

इसके बाद महाराजा साहब इंग्लैण्ड चले गये। प्रजा-परिषद्, जो कांग्रेस में परिवर्तित हो गई थी, चुनाव की तैयारी करने लगी। परन्तु चुनाव की तैयारी में वोटरों की सूची बनाने तथा चुनाव में बड़ी धांधलियां की गईं और कांग्रेस-विरोधी तत्वों को प्रोत्साहन दिया गया। विवश होकर कांग्रेस कमेटी ने इस चुनाव का बहिष्कार कर दिया। कांग्रेसी मंत्री अपने पद छोड़कर अलग हो गये। महाराजा की ओर से गतिअवरोध की समस्या सरदार पटेल के सन्मुख रखी जाने पर रियासती सचिवालय ने श्री पी० एस० राव को दीवान बनाकर भेजा।

दर्शनीय स्थान

बीकानेर यह नगर चारों ओर कोटे से घिरा हुआ है। यहाँ एक नया और एक प्राचीन किला है। किले में अनेक भाषाओं के प्राचीन हस्त लिखित ग्रन्थ हैं। प्राचीन अस्त्र-शस्त्रों। पीतल की मूर्तियों और मिट्टी की वस्तुओं का भी संग्रह है।

गंगा निवास

किले के सामने ही गंगा-निवास नामक सार्वजनिक उद्यान है जिसमें अजा-

किला—बीकानेर
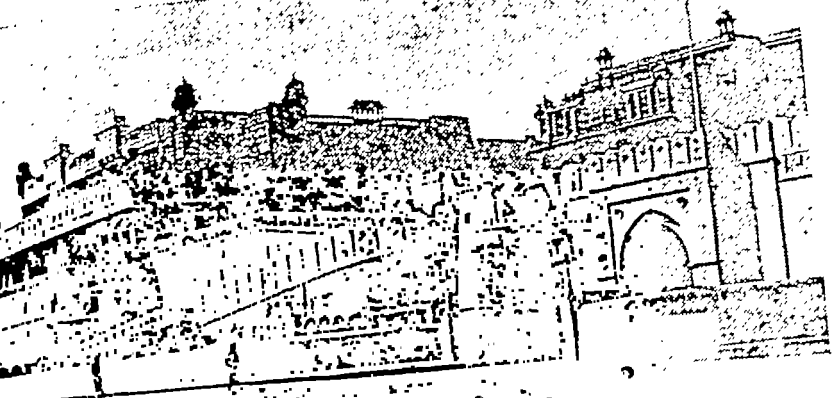
हनूमान गढ़
(बीकानेर राज्य)
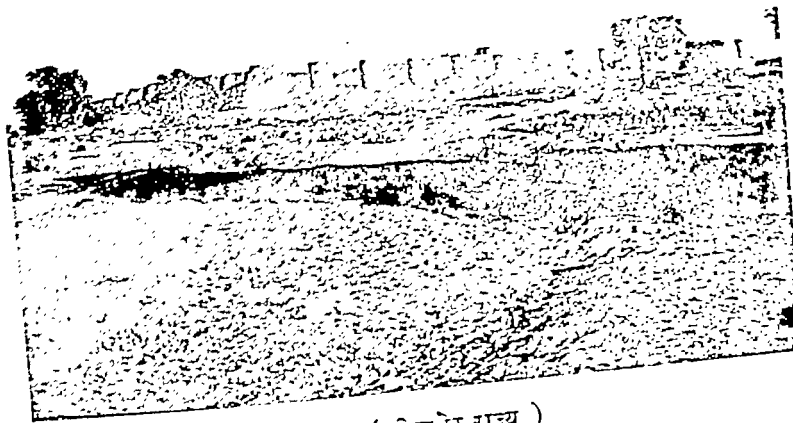
कोलायत जी का मन्दिर (बीकानेर राज्य)
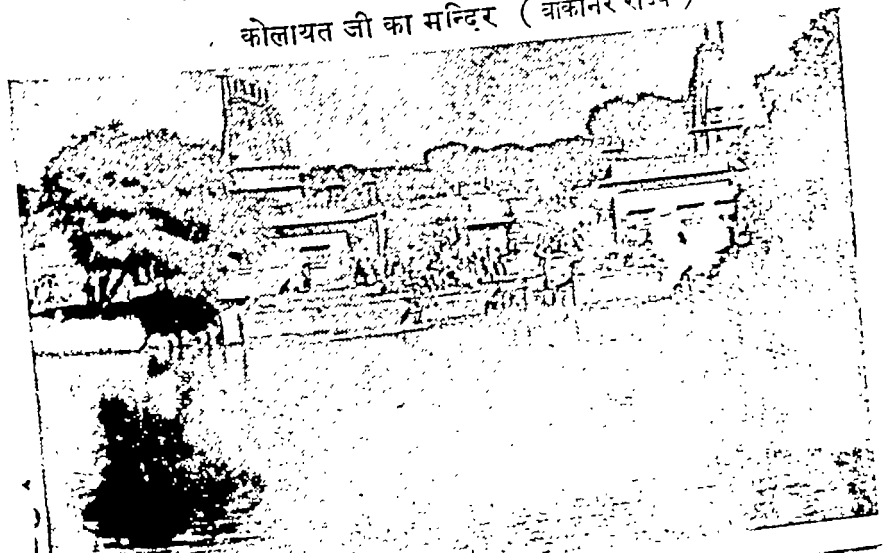
यंत्र घर भी है। नगर से बाहर की इमारतें लाल पत्थर की बनी हुई हैं लाल-गढ़ के महल में खुदाई का बड़ा सुन्दर काम किया गया है। राज्य के अस्पताल और बिजली घर भी देखने योग्य स्थान हैं

कोलायत

बीकानेर के लगभग ३० मील दक्षिण-पश्चिम में कोलायत तालाब जहाँ कपिल मुनि का आश्रम बताया जाता है। यहाँ प्रतिवर्ष हज़ारों यात्री दर्शनार्थ आते हैं और बड़ा भारी मेला लगता है।

गंगा नगर

उत्तर में गंगा नगर है यह बड़ी मंडी और बड़े सुन्दर ढंग से बनायी गयी है। यहाँ के बाज़ार बड़े और साफ हैं। गंगानहर आजने से यहाँ की जन-संख्या और उद्योग-धंधे बहुत बढ़ गये हैं।
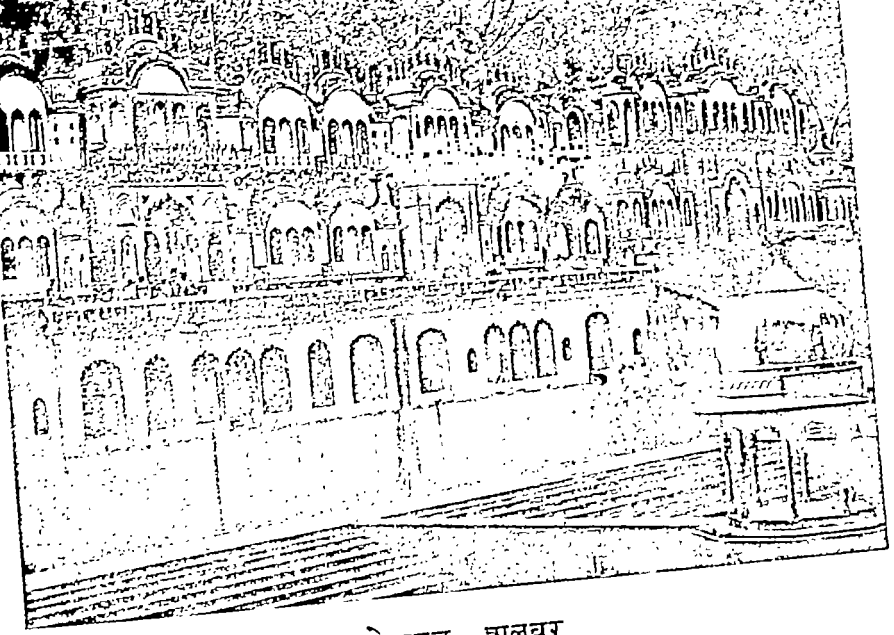
पुराने महल—अलवर

मत्स्य संघ

१७ मार्च १६४८ ई० को अलवर, भरतपुर, करौली और धौलपुर को मिला कर मत्स्य संघ की स्थापना की गयी। भरतपुर और धौलपुर जाटों की रियासतें हैं, तथा अलवर और करौली राजपूतों की।

प्राचीन मत्स्य देश सोलह महाजनपदों में से था, और शूरसेन देश से मिला हुआ उसके पश्चिम में था। पांडव लोग अज्ञातवास के दिनों में मत्स्य के राजा विराट् के यहां छिप कर रहे थे।

महाभारत काल में मत्स्य के निवासी अपनी सत्यवादिता के लिए प्रसिद्ध थे। चीनी यात्री ह्यूएनत्सांग ईसा की सातवीं शताब्दी में यहां आया था और उसने यहां के लोगों की वीरता, रण-निपुणता की मुक्तकंठ से सराहना की थी। मनुस्मृति में भी इस देश के लोगों को रणक्षेत्र में अग्रगामी होकर युद्ध करने वाला लिखा है। १८वीं शती से मत्स्य प्रदेश कट छँट कर पूर्वी राजपूताना की चार रियासतों में बँट गया और पीछे अंग्रेजी राज्य के अधीन चार इकाइयों के रूप में अस्तित्व में आया। अलवर, भरतपुर, धौलपुर, करौली में से सबसे पहले धौलपुर के राजवंश ने अंग्रेजी कंपनी से संधि की। उसके बाद भरतपुर, अलवर और करौली ने। इसके बाद संधियां टूटीं और फिर नई-नई संधियां होती रहीं।

इन रियासतों में राजनैतिक चेतना का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। अन्य देशी राज्यों के आन्दोलन का प्रभाव इन रियासतों में भी पड़ा और जनता ने अपने अधिकारों के लिए आवाज उठायी। भरतपुर के स्वातंत्र्य संग्राम में अमर शहीद रमेश स्वामी का नाम उल्लेखनीय है। मत्स्य संघ की स्थापना के पश्चात अब लोकप्रिय मंत्रिमंडल का निर्माण हुआ है। महाराजा धौलपुर इस संघ के राजप्रमुख बनाये गये हैं और महाराजा अलवर उप राज-प्रमुख हैं।

मंत्रिमंडल

श्री शोभाराम—प्रधानमंत्री, श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी—उप-प्रधानमंत्री, श्री गोपीलाल यादव, श्री भोलानाथ मास्टर, श्री मंगलसिंह और श्री चिरंजीलाल शर्मा।

अलवर

अलवर राज्य मेवात प्रदेश में है। यहां मेव लोग बसते हैं। इस राज्य की स्थापना सन् १७७५ ई० में हुई। अलवर का राजवंश कछवाहा राजपूतों की लालावत खांप का है। आमेर के राजा उदयकरण के बड़े पुत्र बड़सिंह ने अपने छोटे भाई के हक़ में गद्दी का अधिकार छोड़ दिया। इसलिए उसे जयपुर के पास ८४ गांवों की एक जागीर दी गई। इसके बाद राव कल्याणसिंह को जयपुर के कुछ और गांव दिये गये। राव प्रतापसिंह जयपुर से स्वतन्त्र हो गया और इसने अपना अलग छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया। इसने जाटों को हराने में जयपुर की सहायता की जिसके इनाम में इसे राजगढ़ में एक किला बनाने की अनुमति दी गई। सन् १७७५ ई० में इसने अलवर पर अधिकार कर लिया तथा दूसरे सामन्तों ने इसे अलवर राज्य का राजा स्वीकार कर लिया। अलवर ने सन् १८०३ ई० में अंग्रेजों से संधि कर ली। सन् १९०२ ई० में महाराज सवाई जयसिंह गद्दी पर बैठे। ये बड़े विद्वान् तथा प्रभावशाली थे तथा इनके राज्य में अलवर की प्रसिद्धि बढ़ी। सन् १९३१ ई० की गोलमेज़ परिषद् में इन्होंने निर्भीकतापूर्वक अपने विचार रक्खे जिसके कारण अंग्रेज सरकार इनसे नाराज़ हो गयी और ये अलवर छोड़कर यूरोप चले गये जहां पेरिस में इनका देहान्त हो गया। इनकी मृत्यु पर अंग्रेज सरकार ने महाराजा तेजसिंह को इनका उत्तराधिकारी नियुक्त किया जो वर्तमान राजा हैं।

किला—राजगढ़ (अलवर)
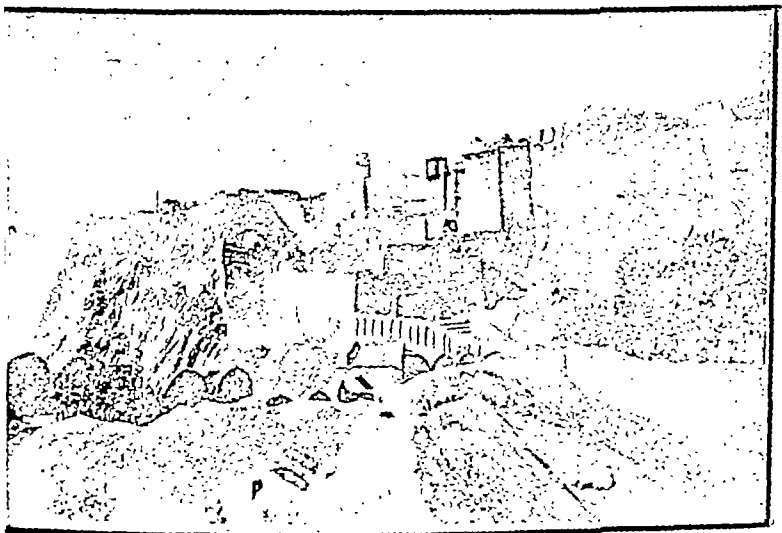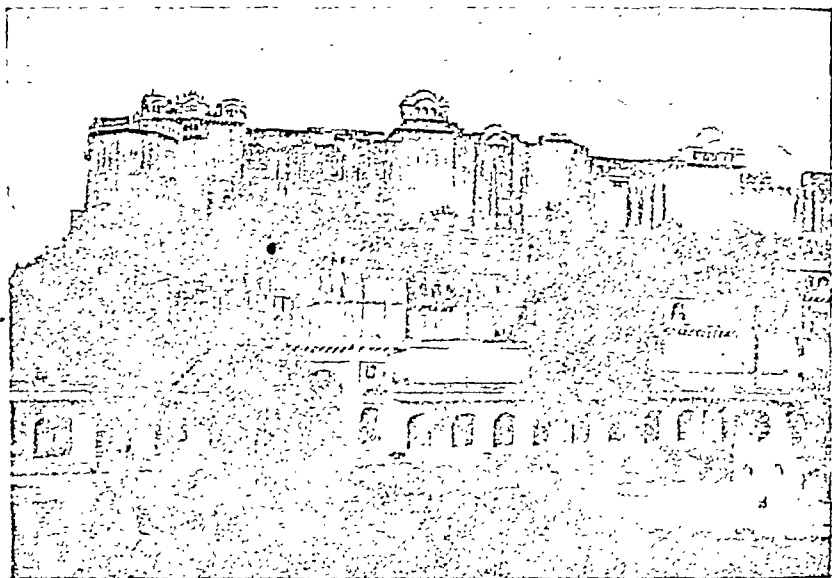
किला—बयाना (भरतपुर)

अलवर में राजनैतिक जागृति का श्रीगणेश सन् १९२५ ई० में हुआ। राज्य ने बिस्वेदारों पर मालगुजारी बढ़ाई तथा उनके अधिकार छीन लिए। जब उन्होंने अंग्रेज़ सरकार को तार दिये तो महाराजा ने क्रोधित होकर उनके विरुद्ध सैनिक कार्रवाई की आज्ञा दे दी। १४ मई १९२५ ई० को नीमूचाणा गांव में राजपूतों की एक सभा पर मशीनगनों से गोलियां चलाई गईं जिसमें अनेक मरे तथा घायल हुए। इस घटना से देश में दूर दूर हलचल मच गई और निष्पक्ष जांच की मांग की गई। परन्तु कोई नतीजा नहीं निकला। गैर-सरकारी जांच से पता लगा कि इस गोलीकांड में १०० के लगभग आदमी मारे गये। सभा में भाग लेने वाले कितने ही राजपूतों को गिरफ्तार भी किया गया था। इनमें से दो को बीस-बीस साल की सजाएँ दी गईं और दो को पांच-पांच साल की। दो व्यक्तियों की जेल में मृत्यु हो गई। अंग्रेज सरकार ने भी इस सम्बन्ध में कोई कदम नहीं उठाया।

राज्य में पहले तो कांग्रेस कमेटी बनाई गई परन्तु बाद में इसे प्रजामंडल का रूप दे दिया गया। राज्य ने दमन किया और गिरफ्तारियां भी हुईं परन्तु प्रजामंडल की प्रगति बढ़ती ही गई। इसने हरिजन उद्धार, खादी प्रचार आदि रचनात्मक कार्य भी किये। सन् १९४६ ई० में अलवर में उत्तरदायी शासन के लिए प्रजामंडल ने सत्याग्रह किया। यह सत्याग्रह लगभग एक सप्ताह चला। राज्य की ओर से काफ़ी दमन हुआ। सत्याग्रहियों को लाठियों आदि से पीटा

गया तथा गिरफ्तारियां हुईं। अन्त में श्री हीरालाल शास्त्री के बीच-बिचाव से सत्याग्रह स्थगित हुआ और समझौते की बातचीत शुरू हुई। राज्य शासन में प्रजामंडल से सहयोग लेने का वचन दिया गया, परन्तु असल में इससे कुछ अधिक लाभ नहीं निकला और असंतोष बढ़ने लगा। मार्च १९४६ ई० में प्रजामंडल के प्रतिनिधि प्रधानमंत्री से मिले। उन्हें उत्तर दिया गया कि भारत में उत्तरदायी केन्द्रीय सरकार बन जाने पर अलवर में उत्तरदायी शासन स्थापित कर दिया जायगा। अक्टूबर १९४७ ई० में महाराजा ने मंत्रिमंडल में तीन लोकप्रिय मंत्रियों को लिये जाने की घोषणा की। परन्तु यह घोषणा वास्तव में थोथी थी। इसलिए प्रजामंडल ने इसे स्वीकार नहीं किया। बाद में अलवर भारतीय संघ में शामिल हो गया तथा मार्च १९४८ ई० में मत्स्य संघ की स्थापना हुई।

महत्वपूर्ण स्थान

राज्य के ठीक बीच में अलवर नगर स्थित है। प्राचीन स्मारकों में यहां पहाड़ पर बना किला, फतहगंज की गुम्बद और बाजार के बीच का त्रिपोलिया प्रसिद्ध हैं। किले में निकुम्भों के महल, सलीम का बनवाया सलीम सागर, सूरज कुण्ड, सूरज महल तथा जयाशय भवन देखने योग्य हैं। यहां की सड़कें भी जयपुर की सड़कों की तरह चौड़ी तथा साफ-सुथरी हैं। यहां के नये राज-महल तथा मन्दिर दर्शनीय हैं। अलवर का होली का उत्सव प्रसिद्ध है।

अन्य शहरों में राजगढ़ देखने लायक है। यहां के पुराने मन्दिर, बावड़ी, तालाब तथा खण्डहर याद दिलाते हैं कि पहले यह अलवर की राजधानी

गोपाल भवन—डीग (भरतपुर)
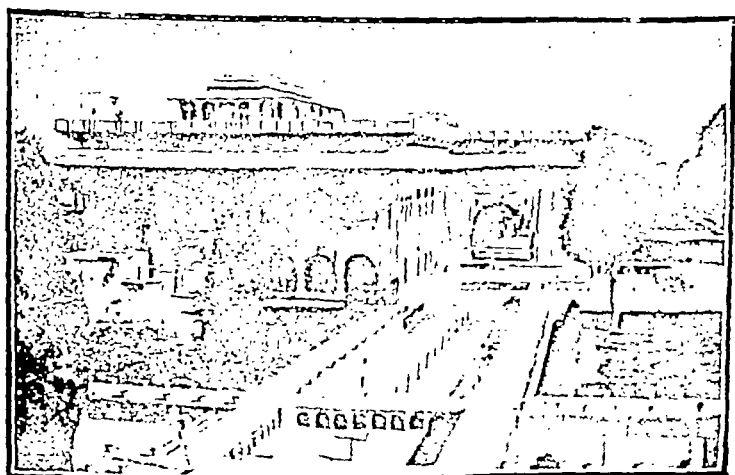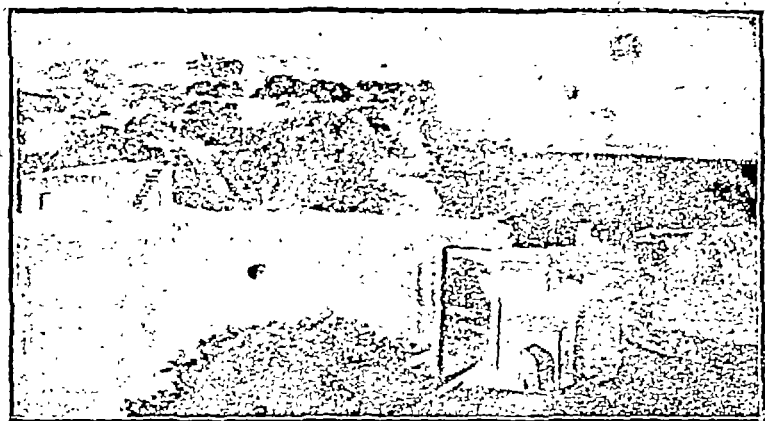
किला—डीग (भरतपुर)

रह चुका है। यहां की जैनमूर्ति, जिसे नौगजा कहते हैं, बहुत बड़ी है और भारत में सबसे बड़ी मूर्ति बताई जाती है।

अलवर से पचास मील दक्षिण-पश्चिम में भानगढ़ है जो इस समय खण्डहर हो चुका है, पर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है।

पांडुपोल में हनुमान जी का प्रसिद्ध मेला लगता है। कहा जाता है कि पांडव अज्ञातवास के समय कुछ दिन यहां रहे थे। यहां के प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोहारी हैं।

नीलकण्ठ बड़गूजरों की राजधानी रहा है और ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। यहां विक्रम की बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ का एक शिव मन्दिर है।

करौली

करौली राजपूताना का एक प्राचीन राज्य है। यहां के राजा यादव वंश के हैं तथा श्रीकृष्ण से अपनी उत्पत्ति मानते हैं। यादव लोगों का राज्य सारे ब्रज प्रदेश में था। ग्यारहवीं शताब्दी में विजयपाल ने बयाना (जो बाद में भरतपुर राज्य में आ गया) में किला बनवाया। विजयपाल की एक प्रशस्ति नरपतिशाह ने 'विजयपाल रासो' के नाम से लिखी है। इसके पुत्र तिमनपाल ने सन् १०५८ ई० में तवनगढ़ का किला बनवाया। सन् ११९६ ई० में मुहम्मद गोरी ने बयाना और तवनगढ़ पर अधिकार कर लिया। सन् १३२७ ई० के लगभग अर्जुनदेव ने फिर अपना राज्य वापिस ले लिया और करौली नगर बसाया। अकबर ने उसे जीत कर मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया और इसके बाद यहां मरहठों का राज्य रहा। सन् १८१७ ई० में अंग्रेज़ सर-

कार ने इसे अपने अधीन कर लिया। वर्तमान नरेश का नाम महाराजा गणेशपाल है।

महत्वपूर्ण स्थान

करौली यहां का मुख्य नगर है। इसके चारों ओर लाल पत्थर की पक्की शहरपनाह हैं, जो सवा दो मील के घेरे में है। इस नगर का पुराना नाम भद्रावती कहा जाता है। यहां महाराजा गोपालपाल के बनवाये हुए महल बहुत सुन्दर हैं। इन महलों का घेरा २,२४० गज के लगभग है और उसके गिर्द एक ऊंची दीवार का अहाता है। महलों में चित्रकारी का काम बहुत उम्दा है। शहर के कुल मकान लाल पत्थर के बने हुए हैं जिसमें कई कीमती और अच्छे मकान हैं। यहां अनेक मन्दिर हैं जिनमें सबसे सुन्दर मन्दिर शिरोमणि का मन्दिर है, जिसे महाराजा प्रतापपाल ने वि० सं० १८९४ में बनवाया था, और सबसे बड़ा मन्दिर मदन मोहन का है, जिसकी मूर्ति महाराजा गोपालपाल जयपुर से लाये थे। करौली की कटार प्रसिद्ध है।

करौली से सोलह मील दूर कैलादेवी का मन्दिर स्थित है जहां भादों और चैत्र में बड़ा मेला लगता है।

गुबरेड़ा गांव में एक अद्भुत कुंआ है, जो ऊपर से पानी की सतह तक एक ही चट्टान को काट कर बनाया गया है। कुंए की गहराई साठ हाथ है और गांव के नाम पर उसे गुबरेड़ा कूप कहते हैं।

करौली में खादी का उत्पत्ति केन्द्र है जहां अच्छी खादी तैयार होती है।

धौलपुर

धौलपुर का राजवंश जाटों की देसवाला खांप का है तथा इसका मूल पुरुष जैतसिंह माना जाता है जिसने ग्यारहवीं शताब्दी में अपना राज्य स्थापित किया। ये लोग बमरौली के रहने वाले थे अतः बमरौलिया कहलाते हैं। सन् १६४४ ई० में सिंगनदेव को ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने जागीर दी तथा इसने राणा की उपाधि ग्रहण की। राणा भीमसिंह ने सन् १७६१ ई० में ग्वालियर का किला जीत लिया पर बाद में यह इसके हाथ से जाता रहा। सन् १७७९ ई० मे अंग्रेजों से सन्धि हुई। सन् १८०५ ई० में धौलपुर, बारी और राजाखेड़ा के परगने राणा कीर्तिसिंह को दे दिये। महाराज राणा

उदयभानसिंह वर्तमान नरेश हैं। ये नरेन्द्र-मण्डल के वाइस-चांसलर रह चुके हैं। ये मत्स्य संघ के राजप्रमुख हैं।

महत्वपूर्ण स्थान

धौलपुर शहर राज्य की राजधानी है। बड़े-बड़े सरदारों की व सरकारी कोठियों के कारण नये शहर का नाम कोठी प्रसिद्ध है। यहां नरसिंह बाग की छत्री, टाउनहाल, घण्टाघर, चिड़ियाखाना, राजघर की छत्री और राजमहल देखने योग्य है।

शेरगढ़ को सर्वप्रथम ३,००० वर्ष पहले राजा मालदेव ने बनवाया था। बाद में यह पालवंशी राजाओं के अधिकार में रहा। सन् १५४० ई० में शेरशाह सूरी ने इसका जीर्णोद्धार कराया। यहीं औरंगजेब, दाराशिकोह और मुराद का युद्ध हुआ।

धौलपुर से दो मील दूर मुचकन्द नाम का विशाल कुण्ड है। सतयुग में राजा रामचन्द्र से १६वीं पीढ़ी पहले मुचकुन्द नाम का राजा हुआ, उसी के नाम पर यह तीर्थ प्रसिद्ध है।

धौलपुर के इलाके में तांतपुर में लाल पत्थर की प्रसिद्ध खानें हैं। यहां से पत्थर ढोने के लिए राज्य ने एक छोटी लाइन (नैरो गेज) डाल रखी है।

भरतपुर

भरतपुर राजस्थान का 'सिंहद्वार' कहा जाता है क्योंकि इसकी सरहद युक्त-प्रान्त से मिली हुई है। इस राज्य का संस्थापक चूड़ामन नामक एक जाट जमींदार था जिसने थून और सिनसिन में दो गढ़ियां बनवाईं। इसलिए भरतपुर के राजा सिनसिनवार जाट कहलाते हैं। आम्बेर के राजा ने चूड़ामन को हराकर उसकी भूमि पर अधिकार कर लिया। इसके पौत्र सूरजमल ने भरतपुर में किला बनवाया तथा महाराजा की उपाधि धारण की। सूदन कवि ने सूरजमल का यशोगान 'सुजान-चरित' में किया है। इसने अपने राज्य का विस्तार बहुत बढ़ाया और आगरे तक पर अधिकार कर लिया। मरहठा युद्ध की समाप्ति के बाद सन् १८०३ ई० में भरतपुर ने अंग्रेज़ों से संधि कर ली और सिंधिया को हराने में उनकी मदद की। परन्तु कुछ ही दिन बाद भरतपुर का राजा रणजीतसिंह इन्दौर के जसवन्तराय होल्कर से मिल गया, जो अंग्रेज़ों का दुश्मन था। सन् १८०४

ई० में डीग के युद्ध में रणजीतसिंह की फौजों ने अंग्रेज़ी फौजों पर गोलाबारी की। होल्कर ने डीग के किले में शरण ली। अंग्रेज़ों ने इसे घेर लिया परन्तु बार बार उनका आक्रमण विफल कर दिया गया। इस युद्ध में अंग्रेज़ों के ३,००० सैनिक मारे गये। अन्त में रणजीतसिंह ने सुलह कर ली। सन् १८०५ ई० में भरतपुर की गद्दी के लिए छै वर्ष की आयु के बलवन्त के समर्थकों में तथा और उसके चचेरे भाई दुर्जनसाल में झगड़ा हुआ। अंग्रेजों ने नाबालिग उत्तराधिकारी का पक्ष लिया और दुर्जनसाल से गद्दी छीन कर बलवन्त को बिठाने के लिए अंग्रेज़ी फौजें भेजी गईं। लगभग डेढ़ महीने के युद्ध के बाद जनवरी १८२६ ई० में भरतपुर का किला फतह हुआ और उसे नष्ट कर दिया गया और बलवन्तसिंह को गद्दी पर बिठाया गया। सन् १८९५ ई० में महाराजा रामसिंह के अधिकार अंग्रेज़ सरकार ने छीन लिये और सन् १९०० ई० में उन्हें गद्दी से उतार दिया गया। इसके बाद महाराजा किशनसिंह गद्दी पर बैठे, इन्हें भी सन् १९२९ ई० में सिंहासन-च्युत कर दिया गया। कारण तो यह बतलाया गया कि राज्य के कोष में गड़बड़ी पैदा हो गयी थी, परन्तु वास्तविक कारण राजनैतिक था। भरतपुर की झीलों में बतखों का शिकार बहुत होता है, इस-लिए वायसराय और अंग्रेज़ अफसर तथा यात्री वहां अक्सर जाते रहते थे जिनकी मेहमानदारी पर रियासत का लाखों रुपया खर्च हो जाता था। महाराजा किशन-सिंह ने इसका विरोध किया था, इसलिए उन पर प्रहार किया गया। सन् १९२९ ई० में महाराज किशनसिंह की मृत्यु के बाद नाबालिग महाराजा ब्रजेन्द्र-सिंह यहां के राजा हुए। इन्हें सन् १९४० ई० में राज्याधिकार प्राप्त हुए।

राजनैतिक जागृति

महाराजा रामसिंह के समय से भरतपुर का शासन अधिकतर पोलिटिकल विभाग के हाथ में रहा। इसलिए यहां नागरिक स्वतन्त्रता को खूब दबाया गया। सन् १९३० ई० में कुछ विद्यार्थियों ने स्वाधीनता दिवस मनाया। सन् १९३२ ई० में कुछ कार्यकर्त्ताओं पर केवल राष्ट्रीय नेताओं के चित्र तथा राजनैतिक पुस्तकें रखने के कारण मुकदमे चलाये गये और श्री आदित्येन्द्र को सरकारी नौकरी से पृथक कर दिया गया।

सन् १९३९ ई० में प्रजा-मंडल की स्थापना हुई। राज्य के नियम के अनु-

सार जब उसे रजिस्ट्री कराने के लिए लिखा गया तो नाबालिगी शासन के अंग्रेज अफसर ने उसे अस्वीकार कर दिया। इस पर प्रजा-मंडल ने सत्याग्रह कर दिया जो नौ महीने तक चलता रहा। अन्त में समझौता हो गया और प्रजा परिषद् की रजिस्ट्री हो गई। सन् १९४०-४१ ई० में प्रजा-परिषद् और राज्य-शासन के बीच फिर संघर्ष चलता रहा। परिषद् के कुछ प्रतिनिधि टाउन बोर्डों में सफल हुए परन्तु सन् १९४२ ई० के आन्दोलन में इन्होंने स्तीफे दे दिये। भारत में आन्दोलन शुरू होते ही परिषद् के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को एक साथ गिरफ्तार कर लिया गया। राज्य में बाढ़ आ जाने के कारण परिषद् ने आन्दोलन स्थगित कर दिया तथा सहायता में लग गई। उधर राज्य ने भी सहयोग का हाथ बढ़ाया जिससे समझौता होकर संघर्ष समाप्त हो गया। सन १९४३ ई० में प्रजा-परिषद् ने व्यवस्थापक सभा के चुनाव में बहुत से स्थान जीत लिए। परन्तु कुछ दिन बाद इन सदस्यों ने व्यवस्थापक सभा का बहिष्कार कर दिया।

सन् १९४७ ई० में बेगार के विरोध में जनता में बड़ा रोष फैला तथा परिषद् ने सरकारी दफ्तरों पर धरना देने की योजना बनाई। इनकी सहानुभूति में एकत्रित भीड़ पर घुड़सवार सैनिक दौड़ाये गये जिससे बहुत लोगों के चोटें आईं। कुछ दिन बाद महाराजा के दौरे से लौटने पर स्टेशन पर प्रदर्शन करने का विचार किया गया। अधिकारियों ने इस योजना को विफल करने के लिए कुछ भाड़े के टट्टुओं को राष्ट्रीय झंडे देकर तथा लारियों में भरकर स्टेशन पहुंचाया। इन लारियों के सामने सत्याग्रह किया गया। पुलिस ने एक लारी सत्याग्रहियों के ऊपर ही चलवा दी जिसके फलस्वरूप श्री रमेश स्वामी की मृत्यु हो गई तथा अन्य कई लोग घायल हुए। राज्य ने श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी के पत्र 'नवयुग-सन्देश' के प्रेस को कब्जे में कर लिया तथा उनकी गिरफ्तारी का वारंट जारी कर दिया, परन्तु वे हाथ न आये। दूसरे कार्यकर्त्ता गिरफ्तार कर लिये गये।

इस स्थिति की जांच करने के लिए अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा-परिषद् ने श्री द्वारकानाथ कचरू को भेजा। वे महाराजा से मिले परन्तु कोई नतीजा न निकला। पर अन्त में महाराजा ने दिसम्बर १९४७ ई० में अन्तरिम सरकार में चार लोकप्रिय-मन्त्रियों को लेने की घोषणा की। नये मंत्रिमंडल के बनने के

वाद भरतपुर रियासत भारतीय संघ में सम्मिलित होगई। इसके वाद मार्च
१९४८ ई० में वह मत्स्य संघ में सम्मिलित कर दी गई।

महत्त्वपूर्ण स्थान

भरतपुर प्राचीन काल में व्रज का हिस्सा था। इस नगर का नाम श्रीराम-
चन्द्र के कनिष्ठ भ्राता भरत के नाम पर पड़ा है। इसके चारों ओर गहरी खाई
है, जो मोतीझील के पानी से भर दी जाती थी। यह किला अजेय दुर्ग कहलाता
है। मिट्टी के इस किले पर गोलों का कोई असर नहीं होता है। लार्ड लेक ने
इस किले को लेने का वार वार प्रयत्न किया परन्तु हर वार वह इसे लेने में
विफल रहा। अन्तमें उसने घेरा डालकर साढ़े तीन मास वाद सन १८०४ ई० में
जीता। किले के अन्दर प्राचीन महल, दरवारे खास, सिलहखाना, खजाना, राजकीय
नये महल तथा मन्दिर देखने योग्य हैं। शहर के चारों ओर धूलकोट है। शहर
में ही महाराजा के महल हैं। भरतपुर का दशहरे का उत्सव प्रसिद्ध है, जिसे
देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं।

भरतपुर के २१ मील उत्तर की ओर डीग का प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग है।
इस किले के चारों ओर खाई है। किले में प्राचीन महल वने हैं। यहां दो
झीलों के वीच में भव्य महल वने हैं जिनमें अठारहवीं शताब्दी की कारीगरी
के सुन्दर नमूने मिलते हैं।

यहां वयाना प्राचीन तथा प्रसिद्ध स्थान है। इसका प्राचीन नाम श्रीपथ था।
वि०सं० ४२८ में वारीक विष्णुवर्धन पुण्डरीकने यहां यज्ञ किया था। उसका स्मारक
वयानेके किलेमें एक खम्भा है जो भील लाट कहलाता है। यहीं वि०सं० १०२८
में वना उषा का मन्दिर है। वयाना का किला मध्यकाल में भारतवर्ष के प्रसिद्ध
किलों में गिना जाता था। समुद्रगुप्त के समय का यहां एक विजयस्तम्भ भी है।
वयाना के पास खानवा के मैदान में वावर और राणा सांगा के वीच में युद्ध
हुआ था।

कामा में यदुवंशियों के चौरासी कीर्ति स्तम्भ हैं। इनमें से एक पर आठवीं
शताब्दी का खुदा हुआ संस्कृत का एक लेख है।
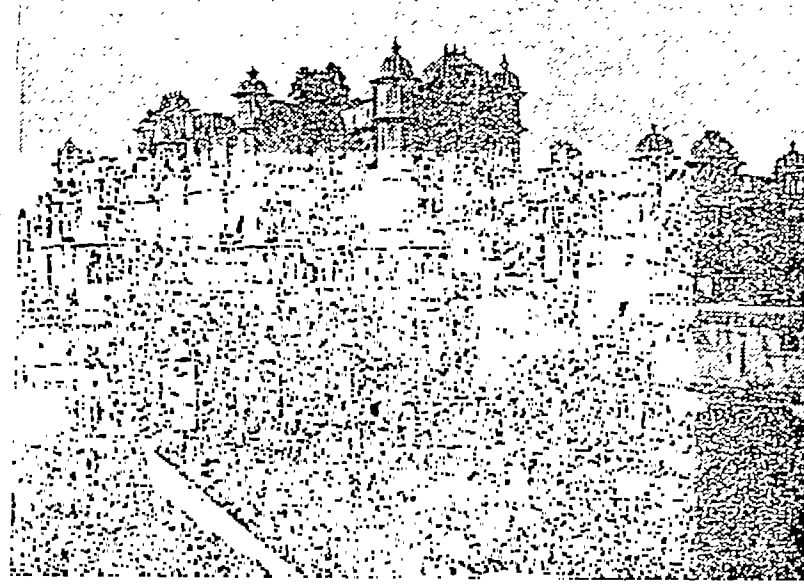
महल—उदयपुर

पीछोला झील—उदयपुर
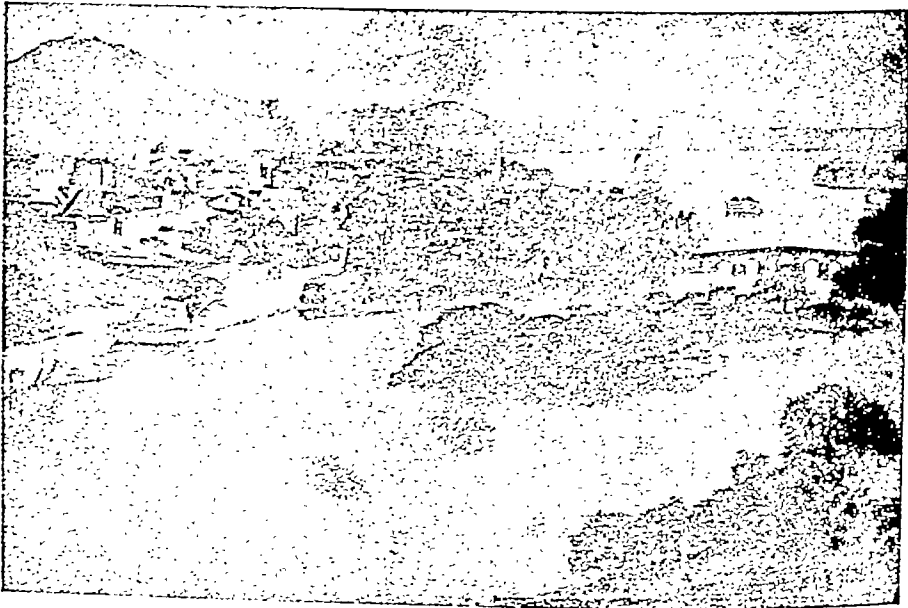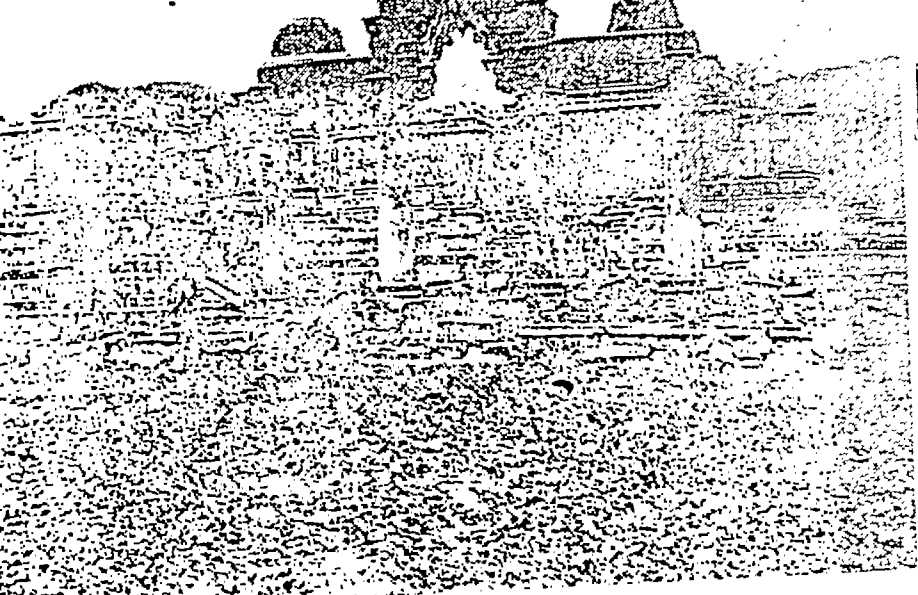
सास बहू के मन्दिर का तोरण—नागदा (उदयपुर)
[का० डि० आफ आर्केलाजी]

❀ मूर्ति ❀ एकलिंगजी ❀ मन्दिर ❀
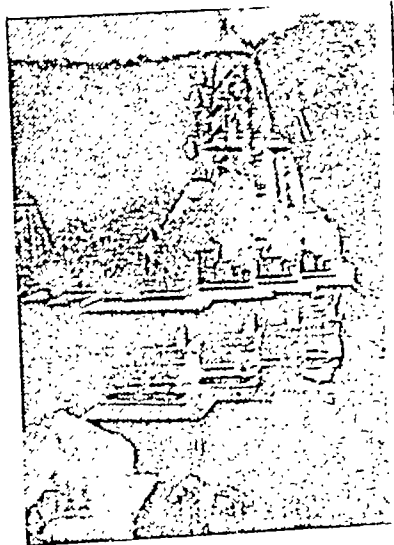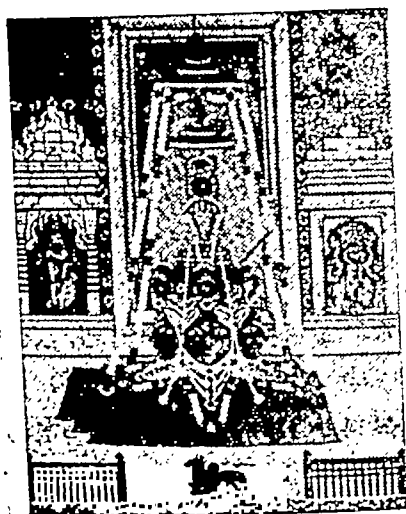
राजपूताना की अधिकांश रियासतें आर्थिक दृष्टि से न तो अपना विकास कर सकती थीं और न जनता के लिए आधुनिक साधन उपलब्ध कर सकती थीं। अतः इनके समूहीकरण की योजना का सूत्रपात हुआ जिसके फलस्वरूप राजपूताने के दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण की नौ रियासतों का एक राजस्थान संघ मार्च १९४८ ई० में बनाया गया। कोटा नरेश इसके राज प्रमुख नियुक्त हुए। बाद में उदयपुर भी इस संघ में शामिल हुआ और संयुक्त राजस्थान राज्य का उद्घाटन मई १९४८ ई० में पं० जवाहरलाल नेहरू ने किया। महाराणा को इस राज्य का आजीवन राजप्रमुख घोषित किया गया तथा शासन की बागडोर लोकप्रिय मंत्रिमंडल के हाथों में आगयी। इस राज्य में उदयपुर, किशनगढ़, कोटा, झालावाड़, टोंक, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा, बूंदी तथा शाहपुरा ये दस रियासतें हैं।

मंत्रिमंडल

श्री माणिक्यलाल वर्मा—प्रधान मंत्री; श्री गोकुललाल असावा—उप-प्रधान मंत्री; श्री प्रेमनारायण माथुर, श्री अभिन्न हरि, श्री मोहनलाल सुखाडिया, श्री भूरेलाल बया तथा श्री व्रज सुन्दर शर्मा।

उदयपुर (मेवाड़)

विक्रम सम्वत् प्रारम्भ होने से तीन शताब्दी पूर्व इस प्रदेश का नाम शिवि था। पीछे इसे प्राग्वार कहा जाने लगा और फिर इसका नाम मेवाड़ पड़ा। यह मेरपार का अपभ्रंश है। १६ वीं शताब्दी में उदयपुर नगर की नींव पड़ने के पश्चात यह उदयपुर राज्य के नाम से भी पुकारा जाता रहा है।

उदयपुर में सिसोदिया राजपूतों का शासन है जो भगवान राम के पुत्र कुश के वंशज बताये जाते हैं। सन् १४५ ई० में इनके पूर्वज पंजाब छोड़कर गुजरात में जा बसे और वहां सन् ५२४ ई० तक शासन करते रहे। विदेशियों के आक्रमण से उनकी राजधानी वल्लभी, जो वर्तमान भावनगर के निकट है नष्ट होगयी और राजपरिवार भाग निकला। इसी समय आबू पर्वत के निकट एक राजकुमार का का जन्म हुआ जिसके वंशधर ईडर में राज्य करते रहे। कालान्तर में भीलों ने विद्रोह किया और शासक को मार डाला, किन्तु राजकुमार बप्पा को किसी प्रकार बचाकर नागीन्द्र (वर्तमान नागड़ा) पहुंचा दिया गया। संयोग से बप्पा ने चित्तौड़ के मौर्य प्रमुख के यहाँ शरण ली और फिर वह मालवा चला गया। बाद में चित्तौड़ की सेना लेकर उसने सिंध के मुसलमानों पर विजय प्राप्त की और अन्त में ७३४ ई० में चित्तौड़ का मालिक बन बैठा। इसने रावल की उपाधि ग्रहण की और मेवाड़ राज्य स्थापित किया।

सन् १२७५ ई० में राणा लक्ष्मणसिंह चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा। उनके शासनकाल में सन् १३०३ ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने पद्मिनी के रूप और गुणों पर मुग्ध हो चित्तौड़ पर चढ़ाई की। राणा और उसके बारह राजकुमार इस युद्ध की भेंट हो गये और और पद्मिनी ने जौहर कर अपने सतीत्व की रक्षा की। केवल राणा का दूसरा पुत्र अजयसिंह बचकर केलवाड़ा चला गया, जहाँ से वह आस-पास के पहाड़ी प्रदेश पर शासन करते रहे। जायसी ने पद्मिनी की कथा के आधार पर पद्मावत नामक प्रसिद्ध महाकाव्य की रचना की है।

अजयसिंह के भतीजे राणा हमीरसिंह (१३५१–१३६४ ई०) ने पुनः चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। मध्य भारत के बहुत से भाग पर भी इसका अधिकार रहा। उसका हठ प्रसिद्ध है। कहावत है, 'तिरिया, तेल, हमीर-हठ चढ़ै न दूजो बार।' मेवाड़ के शासकों में राणा कुम्भा (१४३३–१४६८ ई०) बड़े विद्वान् तथा प्रतापी नरेश हो गये हैं। उन्होंने लगभग ३२ नये किले बनवाये और अनेक भवन बनवाये जिनमें कुम्भलगढ़ का किला और चित्तौड़गढ़ का कीर्ति-स्तम्भ उल्लेखनीय हैं। कीर्ति-स्तम्भ सन् १४४० ई० में मालवा के मुसलमान शासक पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में बनवाया गया था। कुम्भा का पुत्र ऊदा अपने पिता को मार कर मेवाड़ का महाराणा बना। सन् १४७४ ई० में ऊदा गद्दी से उतार दिया गया और उसके बाद रायमल और फिर राणा सांगा गद्दी पर बैठे। राणा सांगा के समय में मेवाड़ अपनी उन्नति की पराकाष्ठा को पहुंच गया। बाबर से युद्ध करने से पहले राणा सांगा सोलह बार दिल्ली और मालवा के मुसलमान बादशाहों को परास्त कर चुका था। सन् १५२७ ई० में उसकी बाबर से खानवा के मैदान में लड़ाई हुई और उसके अगले वर्ष ही उसकी मृत्यु हो गई।

राणा सांगा के बाद रत्ना, विक्रम और उदयसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बैठे जिनके राज्यकाल में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह और फिर सम्राट् अकबर से अनेक भयकर लड़ाइयां हुई। दोनों बार वीर राजपूतानियों ने जौहर किया। अन्तिम युद्ध में भारी हत्याकांड के पश्चात् चित्तौड़ मुगलों के हाथ में चला गया और उसके किले को नष्ट कर दिया गया। उदयसिंह ने उदयपुर की नींव डाली और तब से अब तक वही मेवाड़ की राजधानी है।

उदयसिंह के पश्चात् महाराणा प्रताप गद्दी पर बैठे। उनकी वीरता की कहानियां आज भी प्रत्येक हिन्दू की ज़बान पर हैं तथा स्वातन्त्र्य प्रेम का पाठ पढ़ाती हैं। वे केवल वीर ही नहीं स्वाभिमानी और उदार भी थे। उन्होंने राजा मानसिंह के साथ भोजन करने से इन्कार कर दिया

और मानसिंह के इस अपमान के कारण हल्दी-घाटी का भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध के पहले एक बार राजा मानसिंह अकेले ही शिकार खेलते हुए प्रताप की सीमा में पहुंच गये थे किन्तु प्रताप ने अकेले शत्रु को मारना उचित न समझा। एक बार महाराणा के हाथ शाही सेनापति मिर्ज़ा खाँ की बेगमें पड़ गईं। महाराणा ने उनको बहिन-बेटी की तरह सम्मानित किया और आदरपूर्वक मिर्ज़ा खाँ के पास पहुंचा दिया।

महाराणा प्रताप अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए वर्षों जंगलों में भटकते रहे। उन्होंने घास की रोटियां खाना स्वीकार किया, पर अकबर के आगे अपना सिर नहीं झुकाया। एक बार वे अकबर से सन्धि के लिए तैयार हो गये। भाग्यवश विधाता को यह स्वीकार नहीं था। अकबर के दरबार में बीकानेर नरेश के छोटे भाई और शक्तिसिंह के जमाई पृथ्वीराज भी थे। एक ओर उन्होंने अकबर को महाराणा का सन्देश झूठा बता दिया और दूसरी ओर महाराणा को चेतावनी का पत्र लिखा, जिससे महाराणा सावधान हो गये। ऐसे ही अवसर पर प्रताप के कोषाध्यक्ष भामाशाह ने अतुल सम्पत्ति प्रताप के चरणों में लाकर रख दी जिससे प्रताप ने पुनः सैन्य एकत्रित कर चित्तौड़ छोड़कर शेष सारा मेवाड़ विजय कर लिया। सन् १५९७ ई० में राणा प्रताप की मृत्यु हो गई।

राणा प्रताप के बाद अमरसिंह महाराजा हुआ। उसके शासन-काल में जहांगीर ने स्वयं मेवाड़ पर चढ़ाई की किन्तु शाही सेना को अनेक बार हार खानी पड़ी। अन्त में अमरसिंह ने मुगल सम्राट् से सन्धि करली और अपने पुत्र करन को दिल्ली दरबार में भेज दिया। इस सन्धि के फलस्वरूप चित्तौड़ से शाही सेनायें हटाली गयीं और बल पुनः सिसोदियों के हाथ में आ गया। राणा राजसिंह के समय में औरंगजेब ने हिन्दुओं पर जज़ियाकर लगा दिया। राणा ने इसके विरोध में औरंगज़ेब को कड़ा पत्र लिखा। औरंगज़ेब ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी, किन्तु उसकी सेना को अनेक बार मुँह की खानी पड़ी और राणा राजसिंह के हाथ बहुत-सा सामान लगा। इसी समय बादशाह के भय से श्रीनाथ जी की मूर्ति मेवाड़ लायी जाकर नाथद्वारा में स्थापित की गयी।

राजसिंह के बाद सन् १६८१ ई० में राणा जयसिंह गद्दी पर बैठा। इसने औरंगजेब से सन्धि करली। महाराणा जगतसिंह के समय में राजकुमारी कृष्णाकुमारी के विवाह के लिए जयपुर और जोधपुर में युद्ध ठन गया और मरहठों को राजपूताना में हस्तक्षेप करने का अवसर मिला। अन्त में कृष्णा

कुमारी को ज़हर का प्याला पिलाया गया तब जाकर शान्ति हुई। लगभग एक शताब्दी तक मेवाड़ में सिंधिया और होल्कर का आतंक छाया रहा। अन्त में महाराणा भीमसेन ने अंगरेज़ों से सन् १८१८ ई० में सन्धि कर ली। सन् १९३० ई० में महाराणा फतहसिंह की मृत्यु पर वर्तमान महाराणा भूपालसिंह उदयपुर की गद्दी के उत्तराधिकारी हुए।

राजनैतिक जागृति

उदयपुर में जन-जागरण का सूत्रपात सन् १९१८ ई० में बिजोलिया किसान आन्दोलन से हुआ। यह मेवाड़ ही नहीं, अपितु भारत का प्रथम अहिंसात्मक आन्दोलन था। बेगूं के किसान भी अपने जागीरदार के अत्याचार से पीड़ित थे। उन्होंने अपनी कहानी सरकार तक पहुंचाने का प्रयत्न किया, परन्तु उनकी प्रार्थना का उत्तर गोलियों से दिया गया।

बिजोलिया और बेगूं के आन्दोलन के फलस्वरूप समस्त मेवाड़ के किसान भड़क उठे। भील और मीणों के साथ अत्यन्त नीचता और पाशविकता का व्यवहार किया जाता था। सन् १९२१ ई० में श्री मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में उन्होंने आन्दोलन छेड़ दिया और मेवाड़ सरकार तथा जागीरदारों का शासन स्वीकार करने से इंकार कर दिया। उनका यह आन्दोलन अत्यन्त तीव्रता से बढ़ा और सरकार कठोर हाथों से उसका दमन करने को कटिबद्ध हो गयी। श्री तेजावत को पकड़ कर सात वर्ष के लिए कारावास में डाल दिया गया। पर अन्त में सरकार झुकना ही पड़ा और अनेक नये कर हटा लिये गये और मालगुज़ारी में भी कमी की गयी।

२४ अप्रैल, १९३८ ई० को मेवाड़ प्रजामंडल की नींव पड़ी। सरकार उसे सहन न कर सकी और संस्था को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। संस्था के तत्कालीन मन्त्री श्री माणिक्यलाल वर्मा को उदयपुर से निर्वासित कर दिया गया। प्रजामण्डल का कार्यालय अजमेर लाया गया और वहां से कार्य चालू रखा गया। सरकार से अनेक बार प्रार्थना करने पर भी उसने संस्था के ऊपर से प्रतिबन्ध नहीं हटाया उल्टे दमन-नीति का आश्रय लिया। अनेक कार्यकर्ता पकड़ कर जेल में डाल दिये गये, वहां उनके साथ काफी दुर्व्यवहार किया गया। श्री वर्मा को भी छल से देवली में गिरफ्तार कर लिया गया और १६ मास के लिए कारावास दे दिया गया।

सन् ४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन ने उदयपुर की जनता में फिर नवीन उत्साह फूंक दिया। प्रजामण्डल ने एक प्रस्ताव पास कर महाराणा से अपील की कि वे अँगरेजों से अपना सम्बन्ध विच्छेद करलें। किन्तु शासन की ही समस्त

कार्यकर्ता गिरफ्तार कर लिए गये। सन् १९४२ ई० में श्वारी नदी में भयंकर बाढ़ आजाने के कारण मेवाड़ को भारी क्षति उठानी पड़ी। इसी अवसर पर प्रजामण्डल के कार्यकर्ता भी छोड़ दिए गए।

सन् १९४५ ई० में उदयपुर में अखिल भारतीय देशी राज्य प्रजा परिषद का अधिवेशन पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। देशी रियासत में पहली बार होने वाले इस यहाँ के प्रजा मंडल के संगठन को बहुत बल मिला।

सन् १९४७ ई० में राज्य के कर्मचारियों ने हड़ताल करदी। कर्मचारियों की मांगें थीं कि उन्हें उचित वेतन दिया जाय। इस आन्दोलन को दबाने के लिए राज्य ने दमन का सहारा लिया। एक बार भीड़ पर गोली भी चलाई गयी।

राज्य में वैधानिक सुधार सुझाने के लिए राज्य ने एक कमेटी नियुक्त की जिसमें प्रजा मंडल को बहुमत दिया गया परन्तु इसकी रिपोर्ट पर अमल नहीं किया गया और एक नया विधान बनवाया गया जिसके अनुसार प्रजामंडल का एक प्रतिनिधि मंत्रि मंडल में लिया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद महाराणा ने उदयपुर को भी भारतीय संघ में शामिल करने की घोषणा की। परन्तु लोक प्रिय मंत्रिमडल नहीं बनाया गया। मार्च १९४८ ई० में राजपूताना की कुछ रियासतों का एक राजस्थान संघ बना। बाद में उदयपुर भी इसमें शामिल हो गया और दस रियासतों का एक संयुक्त "राजस्थान राज्य" स्थापित हुआ तथा महाराणा इसके आजीवन प्रमुख बनाये गये।

दर्शनीय स्थान

उदयपुर - मेवाड़ में २०,००० से अधिक जनसंख्या वाला यह एक ही नगर है। पीछोला झील के तट पर यह पुराने ढंग से बसा हुआ है और पहाड़ियों से घिरा होने के कारण अत्यन्त रमणीक स्थान है। नगर के चारों ओर परकोटा खिंचा हुआ है। यहां के दर्शनीय स्थान निम्न हैं:—

जगदीश का मन्दिर—इसे सन् १६५२ ई० में महाराणा जगतसिंह ने बनवाया था।

जगनिवास—यह पीछोला झील में एक टापू है। यहाँ के महल, बगीचा और फव्वारे देखने योग्य हैं। इसे महाराणा जगतसिंह (द्वितीय) ने वि० सं० १७४६ में बनवाया था।

जगमन्दिर--यह भी पीछोला झील के बीच में स्थित है। इसे महाराणा

जगतसिंह (प्रथम) ने बनवाया था।

सज्जन निवास बाग (गुलाब बाग)—यह राजमहलों के नीचे एक लम्बा-चौड़ा सुन्दर बाग है। इसमें अजायबघर, जन्तुशाला, पुस्तकालय और वाचनालय हैं।

सहेलियों की बाड़ी—फतहसागर बांध के नीचे यह एक सुन्दर बाग है यहां के फव्वारों का दृश्य देखने योग्य होता है।

एकलिंगजी- यह उदयपुर से १२ मील उत्तर में स्थित है। इसे कैलाश-पुरी भी कहते हैं। यहाँ एकलिंग महादेव का प्राचीन मन्दिर है। एकलिंगजी उदयपुर राजवंश के कुल देवता माने जाते हैं। मन्दिर के पास ही एक सुन्दर तालाब और महाराणा कुम्भा का बनवाया विष्णु का मन्दिर है जिसे आज 'मीराबाई का मन्दिर' भी कह देते हैं। यहां ग्यारहवीं शताब्दी का बना सास-बहू का मन्दिर भी है। एकलिंगजी के मन्दिर की छतरी पर मूर्तिकला का बहुत अच्छा काम है।

नाथद्वारा—उदयपुर के ३० मील उत्तरपूर्व में बनास नदी पर स्थित छोटा सा कस्बा है। यहां श्रीनाथजी का प्रसिद्ध मन्दिर है जिसके दर्शन के लिए प्रतिवर्ष लाखों भक्त स्त्री-पुरुष आते हैं।

काँकरोली—यहाँ पर वल्लभ सम्प्रदाय का एक मन्दिर है जिसमें द्वारकाधीश की मूर्ति स्थापित है। मंदिर के महंत अपने को वल्लभाचार्य के वंशज कहते हैं। उनके पास हस्तलिखित पुस्तकों का एक बहुमूल्य संग्रह है। कांकरोली के दस मील पूर्व में प्रसिद्ध चारभुजा का मन्दिर है जहां नौचौकी नामक एक बहुत बड़ा बांध है।

ऋषभ देव—उदयपुर से ३६ मील दक्षिण में स्थित धूलेव कस्बे में यह प्रसिद्ध जैन मन्दिर है। प्रतिवर्ष हजारों यात्री इसके दर्शन के लिए आते हैं। इस मन्दिर में केशर चढ़ाई जाती है इसलिए इसे केसरियाजी भी कहते हैं।

बाडौली—यह भैंसरोड़गढ़ से २ मील दूर है। यहां शिव का मन्दिर है, जो अपनी अनुपम कारीगरी के लिए विख्यात है।

झील

पीछोला—इसे विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी में किसी बनजारे ने बनवाया था। पीछोली गांव के निकट होने के कारण इसका नाम पीछोला पड़ा। इसकी लम्बाई ढाई मील और चौड़ाई डेढ़ मील है। इसके किनारे महल बने हुए हैं। जिनके पीछे उदयपुर नगर है।

फतह सागर—यह पीछोला के पास है, छोटी सी झील है। इसे महा-

राणा फतहसिंह ने बंधवाया। यह डेढ़ मील लम्बी तथा एक मील चौड़ी है।

उदय सागर—यह उदयपुर से छै मील पूर्व में स्थित है इसकी लम्बाई ढाई मील और चौड़ाई दो मील है। इसे महाराणा उदयसिंह ने बनवाया था।

राजसमन्द—यह काँकरोली स्टेशन के पास है। इसकी लम्बाई चार मील और चौड़ाई पौन मील है। इसे महाराणा राजसिंह ने सवा करोड़ रुपये की लागत से बनवाया था और इससे नहरें निकाल कर सिंचाई का काम भी होने लगा है।

जय समन्द—यह उदयपुर से ३४ मील दक्षिण में है। इसे ढेबर भी कहते हैं। इसकी लम्बाई नौ मील और चौड़ाई पांच मील है। यह संसार की सबसे बड़ी कृत्रिम झीलों में से एक है। इससे नहरें निकालकर सिंचाई की जाती है। इससे ४-५ मील दूर ही शक्कर का एक बड़ा कारखाना है। इस झील का बांध बड़ा लम्बा और सुदृढ़ है। यह राणा जयसिंह का बनवाया हुआ है।

क़िले

चित्तौड़—मेवाड़ ही नहीं, समस्त भारत के इतिहास में चित्तौड़ के किले का विशेष महत्व है। कहा जाता है इस किले को मौर्यवंशी राजा चित्रांगद ने बनवाया था। इसीसे इसका नाम 'चित्रकूट' और फिर बिगड़कर 'चित्तौड़' पड़ा।

यह समुद्र से लगभग २००० फीट की ऊंचाई पर एक पहाड़ी पर बना हुआ है। इसकी लम्बाई साढ़े तीन मील और चौड़ाई आधा मील तक है। किले तक पहुँचने के लिए सात दरवाजे पार करने पड़ते हैं जिनमें पहला पाडल-पोला है। किले में हमेशा जल से भरे रहने वाले अनेक कुण्ड हैं। यहां छोटी-सी बस्ती भी है और खेती-बाड़ी होती है। किले के चारों ओर ७ मील लम्बा परकोटा खिचा हुआ है। किले में दर्शनीय वस्तुयें निम्न हैं:—

कीर्त्ति-स्तम्भ—मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी पर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में इसे महाराणा कुम्भा ने बनवाया था। तल भाग में इसकी चौड़ाई ३० फीट और ऊंचाई १२० फीट है। इसमें नौ खण्ड हैं और ऊपर चढ़ने के लिए घूमती हुई १५७ सीढ़ियां बनी हुई हैं। इस पर मूर्त्तिकला तथा खुदाई का काम राजपूत वास्तुकला तथा स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट नमूना है।

जैन कीर्त्ति-स्तम्भ--यह कीर्ति स्तम्भ के पास ही ७६ फीट ऊंचा स्तम्भ है। इसे चौदहवीं शताब्दी में जैन तीर्थंकर ऋषभदेव के नाम पर बनवाया गया था। इसके चारों कोनों पर ५-५ फीट ऊंची ऋषभदेव की मूर्तियां खुदी हुई हैं।

इनके अतिरिक्त किले में जयमल और कल्ला की छत्रियाँ, रावत पत्ता का चबूतरा, कुम्भश्याम, तुलजा भवानी, अन्नपूर्णा, कालिकादेवी, अदबदजी, सात बीस देवला आदि के मन्दिर, भीमगोड़ी, सूर्य कुण्ड, गौमुख आदि तालाब और पद्मिनी, जयमल, पत्ता, गोरा, बादल और हिंगलू आहाड़ा के महल देखने योग्य हैं।

कुम्भलगढ़—यह उदयपुर से ४० मील उत्तर में एक ऊँची पहाड़ीपर बना हुआ है। इसे महाराणा कुम्भा ने वि० सं० १५१५ में बनवाया था। इस किले की लम्बाई दो मील है और ऊपर तक पहुंचने के लिए एक गोल घूमता हुआ मार्ग बना है। यहां नील कंठ महादेव का मन्दिर और दुमंजिला यज्ञवेदी भवन दर्शनीय हैं।

माँडलगढ़—यह उदयपुर से १०० मील दूर एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। इसे चौदहवीं शताब्दी में अजमेर के चौहान राजाओं ने बनवाया था। इसमें दो कुंड तथा जैनियों का एक मन्दिर भी है।

सार्वजनिक संस्थायें

विद्याभवन—यह उदयपुर की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था है। यहाँ आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रणाली से बच्चों से लेकर अध्यापकों तक को शिक्षा दी जाती है।

राजस्थान-महिला-मंडल— श्रोत्रिय दम्पति द्वारा संचालित यह संस्था मेवाड़ की महिलाओं में जाग्रति फूँकने में बहुत भाग ले रही है। इसके द्वारा आयोजित शिक्षणालय में अन्य विषयों के साथ नृत्य, आदि ललित कलाओं और उपयोगी दस्तकारियों की भी शिक्षा दी जाती है।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ—यह भी मेवाड़ की एक प्रमुख शिक्षण संस्था है और भारतीय ढंग पर हिन्दी माध्यम द्वारा सब विषयों की उच्चतम शिक्षा देने का प्रबन्ध करती है। इसका एक अनुसंधान विभाग भी है।

समाज सेवाविद्यालय—समाज सेवा की शिक्षा देने के लिए यह विद्यालय सरकार की ओर से स्थापित किया गया है।

वनवासी सेवा संघ—इसका उद्देश्य मेवाड़ की पिछड़ी हुई जातियां-जैसे भील मीणा आदि-में जाग्रति पैदा कर उन्हें शिक्षित और उन्नत बनाना है। भीलों में इस संस्था ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इस संस्था के कार्य की श्री ठक्कर बापा पं० नेहरू आदि ने प्रशंसा की है।

किशनगढ़

किशनगढ़ राज्य की स्थापना जोधपुर के महाराना उदयसिंह के छोटे पुत्र किशनसिंह ने की। ये सन् १५६६ ई० में जोधपुर छोड़ कर चले आये।

अकबर ने इनकी वीरता से प्रसन्न होकर इन्हें सेटोलाव की जागीर दी और यहां इन्होंने सन् १६११ ई० में किशनगढ़ बसाया। सन् १८१८ ई० में किशनगढ़ के महाराना कल्याणसिंह ने अंग्रेज़ों से संधि करली। महाराजा यज्ञनारायण सिंह ने किशन गढ़ का विस्तार किया तथा यहां कपड़े की एक मिल खोली। ये निस्संतान थे। वर्तमान महाराजा सुमेर सिंह इनके उत्तराधिकारी हैं।

किशन गढ़ चारों ओर परकोटे से घिरा हुआ है। यहां दो बड़े तालाब हैं तथा नवग्रहों का एक प्र[illegible] मंदिर है। शहर से लगभग तीन मील पर मंझेला नामक एक सुन्दर झील है।

सलेमाबाद में वैष्णवों की निम्बार्क शाखा के गुरू की गद्दी है। उनका एक पुराना मन्दिर भी है।

किशन गढ़ से सोलह मील उत्तर में रूपनगर है जहां पृथ्वीराज की घुड़साल थी। यहां बालेचों के टीबे पर ग्यारहवीं शताब्दी के शिला लेख हैं। राजपूताना के एक मान्य पीर तेजाजी की यह जन्म-भूमि है।

कोटा

कोटा राज्य की स्थापना सन् १६२५ ई० के लगभग हुई। बूँदी के हाड़ा राजा रतनसिंह के छोटे पुत्र माधोसिंह को जहांगीर ने कोटा और उसके पास का इलाका इनाम में दिया। माधोसिंह के छै उत्तराधिकारियों में से तीन तो मुगल सम्राटों के लिए युद्ध में काम आये तथा चौथा शाहज़ादा अजीम और शाहज़ादा मुअज्ज़म के आपसी युद्ध में अजीम की तरफ से लड़ता हुआ मारा गया। सन् १७७१ ई० में उम्मेदसिंह (प्रथम) गद्दी पर बैठे और उसने अपने दीवान ज़ालिमसिंह की सलाह से अंग्रेज़ों से संधि करली। इसके परिणाम स्वरूप ज़ालिमसिंह तथा इसके उत्तराधिकारियों के लिए शासन का अधिकार सुरक्षित कर दिया गया। सन् १८३४ ई० में राजा रामसिंह और दीवान मदनसिंह को १७ परगनों की जागीर दे दी गयी। मदनसिंह ने इन परगनों में अपना स्वतन्त्र राज्य झालावाड़ के नाम से स्थापित किया। सन् १८७४ ई० में राजा छत्रसाल (द्वितीय) की अयोग्यता के कारण राज्य का शासन पोलिटिकल एजेण्ट ने सम्हाल लिया। वर्तमान महाराज इनके पौत्र हैं।

कोटा में राजनैतिक जागृति का श्रेय श्री अभिन्नहरि तथा उनके साथियों को है। उन्होंने सन् १९३१ ई० के आंदोलन में अजमेर में जाकर भाग लिया तथा बाद में कोटा को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। सन् १९४६-४७ ई० में कोटा में जन-आंदोलन हुआ और जिसे दबाने के प्रयत्न किये गये। मार्च १९४८

ई० में राजस्थान संघ स्थापित हुआ जिसकी राजधानी कोटा रक्खी गई तथा राजप्रमुख कोटा के महाराजा बनाये गये। परन्तु बाद में उदयपुर के इस संघ में शामिल हो जाने पर मई १९४८ ई० में संयुक्त राजधानी उदयपुर तथा राज-प्रमुख उदयपुर के महाराणा बनाये गये।

महत्वपूर्ण स्थान

कोटा नगर चम्बल नदी के किनारे बसा हुआ है तथा यहां अनेक पुरानी इमारतें हैं। पुराने राजमहल तथा मन्दिर दर्शनीय हैं। अधरशिला प्रकृति का एक चमत्कार है। यह बड़ी भारी शिला ज़रा से सहारे पर टिकी हुई है।

कोटा में पत्थर तथा अभ्रक की खानें हैं। यहां दियासलाई बनाने का कारखाना है।

झालावाड़

झालावाड़ राज्य का इलाका पहले कोटा का हिस्सा था। यहाँ के राजा राजपूतों की झाला खांप के हैं और अपने को चन्द्रवंशी मानते हैं। इनके पूर्व इतिहास का पता नहीं है।

कोटा के इतिहास में लिखा जा चुका है कि जालिमसिंह ने किस तरह झालावाड़ प्राप्त किया। झालावाड़ का नया विस्तृत राज्य सन् १८३९ ई० में स्थापित हुआ। इस समय यहाँ के राजा भवानी सिंह थे। इन्होंने झालरा-पाटन नगर बसाया। शिक्षा में इनकी विशेष रुचि थी। इन्होंने राज्य के स्कूल खोले और पुस्तकालय तथा पुरातत्व विभाग स्थापित किया। वर्तमान महाराजा राजेन्द्रसिंह इसके पुत्र हैं।

झालावाड़ की राजधानी झालरापाटन है जिसे अब ब्रजनगर कहते हैं यहाँ एक बहुत अच्छा संग्रहालय है जिसमें प्राचीन शिला लेख मूर्त्तियां तथा हस्त लिखित ग्रन्थों का बहुत अच्छा संग्रह है।

ब्रजनगर के पास पाटन तथा चन्द्रावती के खंडहर हैं जिनमें पत्थर पर खुदाई तथा मूर्त्तियां की कारीगरी देखने योग्य है यहाँ के अनेक भग्नावशेष संग्रहालय में रख दिये हैं।

झालावाड़ में राजनैतिक आन्दोलन की कुछ शुरुआत सन् १९४७ ई० में जब महाराजा ने एक विधान निर्मातृ परिषद बनाये जाने की घोषणा की। मार्च १९४८ में झालावाड़ राजस्थान संघ में शामिल हो गया।

टोंक

टोंक राज्य की स्थापना सन् १८१७ में हुई इसका संस्थापक अमीर खाँ था जो पिंडारियों का सरदार था। अंग्रेज़ों ने इसे यह इलाका इस शर्त पर दिया

कि वह पिंडारियों के दल को तोड़ दे। बाद में रामपुर और अलीगढ़ के परगने इसे इनाम में दिये गये। टोंक का कुछ भाग राजपूताना में है तथा कुछ मध्य भारत में। इसके तीन टुकड़े हैं जो टोंक, अलीगढ़ और सिरोंज कहलाते हैं।

टोंक के नवाब बूनेर पठान हैं। इसको पूर्वज तालेखाँ अपना मुल्क छोड़ कर हिन्दुस्तान आया और उसने रोहितांसा में अलीम्मुह खां के नौकरी की। इसके पुत्र अमीर खाँ ने इधर-उधर फौज इकट्ठी कर ली और होल्कर को सहायता दी जिसने इस [illegible] का परगना इनाम में दिया। बाद में उसने पिंडारियों से मिलकर लूटपाट शुरू की। अंग्रेज़ सरकार ने पहले तो इस धमकी दी फिर संधि करने को बाध्य किया।

आजकल नवाब इस्माइल खां यहां के नवाब हैं। टोंक की मस्जिद दर्शनीय है। निम्बाहेड़ा में पत्थर की चौकियां अच्छी निकलती हैं जो फर्श में जड़ी जाती हैं।

डूंगरपुर

यह राज्य राजपूताने के दक्षिण सिरे पर मेवाड़ से सटा हुआ है। यहाँ के शासक सीसोदिया राजपूत हैं जो अपने को रावल क्षेमसिंह के ज्येष्ठ पुत्र सामन्तसिंह का वंशधर बतलाते हैं। वर्तमान नरेश महारावल लक्ष्मणसिंह हैं।

डूँगरपुर में भील सेवा मंडलने जन-जाग्रति की ओर प्रशंसनीय कार्य किया है। उसकी ओर से अनेक पाठशालायें खोली गयी हैं, जिससे वहाँ की जनता में काफी राजनैतिक चेतना की जाग्रति हुई है। सन् १९४७ ई० में जब डूँगरपुर सरकार ने बढ़ती हुई जन-जाग्रति को देखा तो दमन-नीति का आश्रय लिया और अनेक कार्यकर्ताओं को पकड़ कर जेल में डाल दिया तथा लाठीचार्ज आदि किये गये। श्री भोगीलाल पंड्या और कुछ अन्य व्यक्तियों के प्रयत्नों से यहाँ प्रजामंडल की स्थापना हुई जिसने लोकप्रिय सरकार की मांग उठाई। कुछ दिनों तक डूँगरपुर में लोकप्रिय मंत्रिमंडल बना भी। बाद में संयुक्त राजस्थान संघ का निर्माण होने पर रियासत उसमें मिल गयी।

दर्शनीय स्थान

डूंगरपुर—यह इस राज्य की वर्तमान राजधानी है और पहाड़ की एक तलहटी में बसा हुआ है। इसे महारावल डूँगरसिंह ने सं० १४१५ के लगभग बसाया था। यहां के खिलौने, पानी के बर्तन और हरे पत्थर की खुदी मूर्तियां अच्छी होती हैं। कस्बे के चारों ओर परकोटा खिंचा हुआ है। दक्षिण की पहाड़ी पर किला है, जहां विजयगढ़ नामके राजमहल बने हुए हैं। पहाड़ी के नीचे पुराने राजमहल स्थित हैं।

शहर के बाहर पास ही गैव सागर नाम की झील है। इस झील के दक्षिण तट पर उदयविलास नामक राजमहल हैं, जहां वर्तमान महारावल निवास करते हैं। गैवसागर के भीतर का बादल महल और उसके तट पर का गोवर्धननाथ का विशाल मन्दिर भी दर्शनीय है। राजधानी से छः मील के फासले पर एडवर्ड समन्द नाम का विशाल तालाब है।

देवगाँव—यह डूँगरपुर के उत्तर-पूर्व में १५ मील दूर है। यहाँ पर सोम नदी के तट पर देव सोमनाथ का प्राचीन और दर्शनीय मंदिर है जो विक्रम की बारहवीं शताब्दी का अनुमान किया जाता है।

बेणेश्वर—यह डूंगरपुर से ५० मील दूर बांसवाड़ा राज्य की सीमा पर स्थिति है। यहां सोम और माही नदियों के संगम पर बेणेश्वर महादेव का मन्दिर है। शिवरात्रि के अवसर पर यहां बड़ा भारी मेला लगता है और दूर-दूर से हजारों व्यक्ति दर्शनार्थ आते हैं।

प्रतापगढ़

प्रतापगढ़ का राज्य राजपूताने के दक्षिणी ओर पर और मेवाड़ के दक्षिणी-पूर्वी कोने पर है। यहां भी शिसोदिया राजपूतों का शासन है जो राणा मोकल के द्वितीय पुत्र खेमसिंह की संतान हैं। संयुक्त राजस्थान संघ का निर्माण होने पर रियासत उसमें सम्मिलित होगयी।

प्रतापगढ़—यह प्रतापगढ़ राज्य की राजधानी है। इसे सं० १७१४ में महारावत प्रतापसिंह ने बसाया था। कस्बे के चारों ओर परकोटा है जिसमें छः दरवाजे हैं। परकोटे से थोड़ी ही दूर 'दीपनाथ' नामक रमणीक स्थान है, जहां दीपनाथ महादेव का मन्दिर है। प्रतापगढ़ में कांच पर सोने की मीनाकारी तथा चित्रकारी बहुत सुन्दर होती है।

देवलिया—यह प्रतापगढ़ से ८ मील पश्चिम में छोटा-सा गांव है। प्रतापगढ़ बनने से पहले यही इस राज्य की राजधानी था। यहां पुराने महल हैं वहां महारावल साहब कभी-कभी निवास करते हैं। पास ही तेजर (तेजसागर) नाम का तालाब है जिसके तट पर एक स्नान घर है जो सम्राट जहांगीर के सेनापति महाबत खाँ का बनवाया हुआ बताया जाता है।

बांसवाड़ा

बांसवाड़ा राज्य राजपूताने के एकदम दक्षिणी छोर पर है। यहां के शासक डूंगरपुर के वंश में से हैं। वर्तमान नरेश महारावल पृथ्वीसिंह हैं। संयुक्त राजस्थान संघ का निर्माण होने पर रियासत उसमें मिल गई।

बांसवाड़ा—यह बांसवाड़ा राज्य की राजधानी है। इसके चारों तरफ

पत्थर का परकोटा है। राजमहल ७,४०० फीट ऊँची पहाड़ी पर बना है जिसका 'शहर विलास' नाम का दो मंजिला भवन दर्शनीय है। महल के पास पूर्व में 'बाई तालाब' नामक झील है। बांसवाड़ा से छः मील दूर विट्ठलदेव गांव में नीलकंठ महादेव का प्राचीन मन्दिर दर्शनीय है।

तलवाड़ा—यह बांसवाड़ा से ८ मील पश्चिम में स्थित है। यहां गुजरात के महाराजा सिद्धराज जयसिंह सोलंकी का बनवाया गणपति का मन्दिर और विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग बना सूर्य-मन्दिर दर्शनीय हैं।

कलिंजरा—यह बांसवाड़ा से १६ मील दक्षिण-पश्चिम में हारन नदी के किनारे पर छोटा-सा गांव है। यहां दिगम्बर जैनों का ऋषभदेव का बड़ा जैन-मन्दिर है।

बून्दी

बून्दी का दूसरा नाम हाड़ौती भी है क्योंकि यहां के राजा चौहानों को हाड़ा खांप के हैं। दशवीं शताब्दी में चौहान लक्ष्मणराज चौहानों की राजधानी सांभर को छोड़कर राजपूताना के दक्षिण-पश्चिम में नादोल पहुंचा और वहां राज्य करने लगा। हाड़ा नाम राजा हरराज से पड़ा है जिसे हाड़ो कहते थे। सन् १२४२ ई० के लगभग देवराज ने मीनों से बून्दी छीन ली और उसका राजा बन गया।

पन्द्रहवीं शताब्दी में हाड़ा राजपूतों का मेवाड़ से बहुत दिन संघर्ष चला। सन् १५४७ ई० के लगभग मांडू (मालवा) के सुलतान ने बून्दी पर चढ़ाई की राव बारीसाल के पुत्र को कैद कर लिया। उसने इसे मुसलमान बना कर इसका नाम समरकन्द रक्खा। जब बून्दी के राजा ने मांडू पर हमला किया तो समरकन्द ने उसे हराकर कुछ वर्ष बून्दी पर राज्य किया।

राव सुरजन ने उदयपुर के राणा के लिए रणथम्भोर का प्रसिद्ध किला फतह किया परन्तु बाद में इस पर अकबर का अधिकार हो गया। कहते हैं अकबर ने यह किला चालबाज़ी से जीता था।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कोटा के अलग हो जाने से हाड़ौती के दो भाग हो गये।

बून्दी के राना शत्रुशाल बड़े वीर तथा प्रतापी हुए हैं। इन्होंने दक्षिण की बहुत-सी लड़ाइयों में भाग लिया और जब शाहजहां के पुत्रों में गद्दी के लिए लड़ाई हुई तो इन्होंने दारा का पक्ष लिया। सन् १६५८ ई० में अजमेर के पास दौराई के युद्ध में इनकी मृत्यु हुई। महाकवि भूषण ने शत्रुशाल की प्रशंसा में बहुत छन्द लिखे हैं।

चौरासी खम्भों की छतरी बूंदी

सन् १७०७ ई० में बुधसिंह ने औरङ्गजेब की मृत्यु के बाद शाहआलम को गद्दी पर बैठाने में सहायता दी। सन् १८१८ ई० में बून्दी के राजा किशनसिंह ने अङ्गरेज़ों से सन्धि करली।

वर्तमान राजा का नाम महाराव बहादुरसिंह है।

बूंदी में भी राजनैतिक जागृति का इतिहास बहुत नया है। यहां की फौज़ के एक उच्च अफसर श्री नित्यानन्द नागर अजमेर में सन् १९३१ ई० के नमक सत्याग्रह में भाग लिया। इनकी ज़ागीर और सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई। सन् १९४६ ई० में यहां प्रजापरिषद की स्थापना हुई जिसने उत्तरदायी शासन की मांग रक्खी। विधान बनाने के लिये एक कमेटी नियुक्त की गयी परन्तु उसकी रिपोर्ट परअमल नहीं किया गया। बूंदी में सार्वजनिक सभाओं पर एक-दो बार लाठियां भी चलाई गईं। एक बार मोटर लारी वालों की हड़ताल पर झगड़ा हो गया जिससे राज्य की पुलिस ने गोलियां चलाईं। इस कांड की जांच के लिए एक कमीशन बैठाया गया।

सन् १९४७ ई० में महाराजा ने सुधारों की घोषणा की। बाद में यह रियासत राजस्थान संघ में शामिल हो गई।

बून्दी एक पुराना शहर है जिसके चारों तरफ कोटा है। यहां की बावड़ियां बड़ी कलापूर्ण हैं। बून्दी में कई तालाब तथा पुराने मन्दिर हैं।
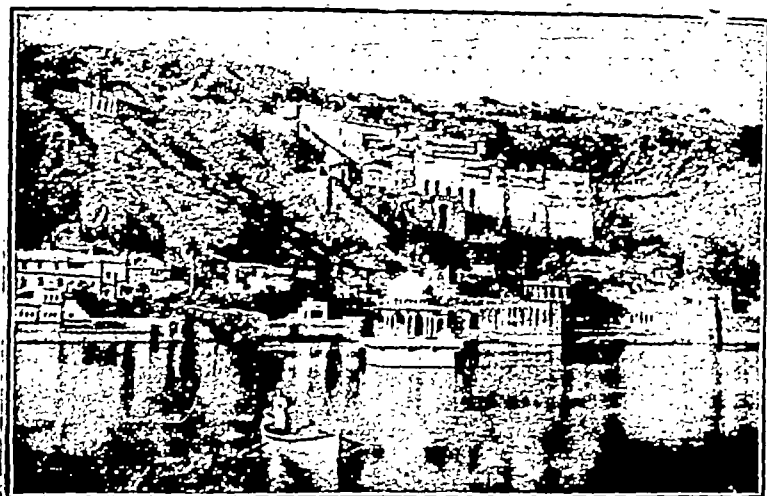
नवलखा तालाब—बूंदी

शाहपुरा

शाहपुरा का छोटा-सा राज्य अजमेर के मध्य व अजमेर-मेरवाड़ा ज़िला के दक्षिण भाग में है। इसे उदयपुर के महाराणा उदयसिंह के पौत्र सुजानसिंह ने स्थापित किया था। भूतपूर्व नरेश राजाधिराज उम्मेदसिंह ने अपने जीवन-काल में ह गद्दी छोड़ दी और इस समय राजाधिराज सुदर्शन देव वहां के शासक हैं।

१९४२ ई० के आन्दोलन में यहां के तीन कार्यकर्ता पकड़ कर अजमेर जेल में रखे गए। उसके पश्चात् यहां प्रजा-मण्डल की स्थापना हुई और उत्तर-दायी सरकार की मांग की गयी। सन् १९४७ ई० में श्री गोकुललाल असावा के प्रधान-मन्त्रित्व में लोकप्रिय सरकार और विधान-निर्मात्री परिषद् का निर्माण हुआ और उसे विधान बनाने का पूरा अधिकार दे दिया गया। इस प्रकार का कदम उठाने वाली रियासतों में शाहपुरा सर्व प्रथम रियासत थी। संयुक्त राजस्थान संघ का निर्माण होने पर रियासत उसमें सम्मिलित हो गयी।

शाहपुरा को सम्राट् शाहजहाँ के नाम पर सुजानसिंह शिसोदिया ने सं० १६८८ में बसाया था। शहर के चारों ओर मज़बूत परकोटा है जिसमें चार दरवाज़े हैं। शहर के बाहर कुण्ड दरवाजे के पास राम-स्नेही साधुओं का मठ 'राम-द्वारा' है।

शाहपुरा राजधानी में नाहरसागर तथा उम्मेदसागर नाम के दो विशाल तालाब हैं और दर्शनीय इमारतों में राजमहल, नाहर-निवास, उम्मेद-निवास, सरदार-निवास, बख्त-विलास, आर्यसमाज मन्दिर, रामद्वारा और जैन मन्दिर हैं।
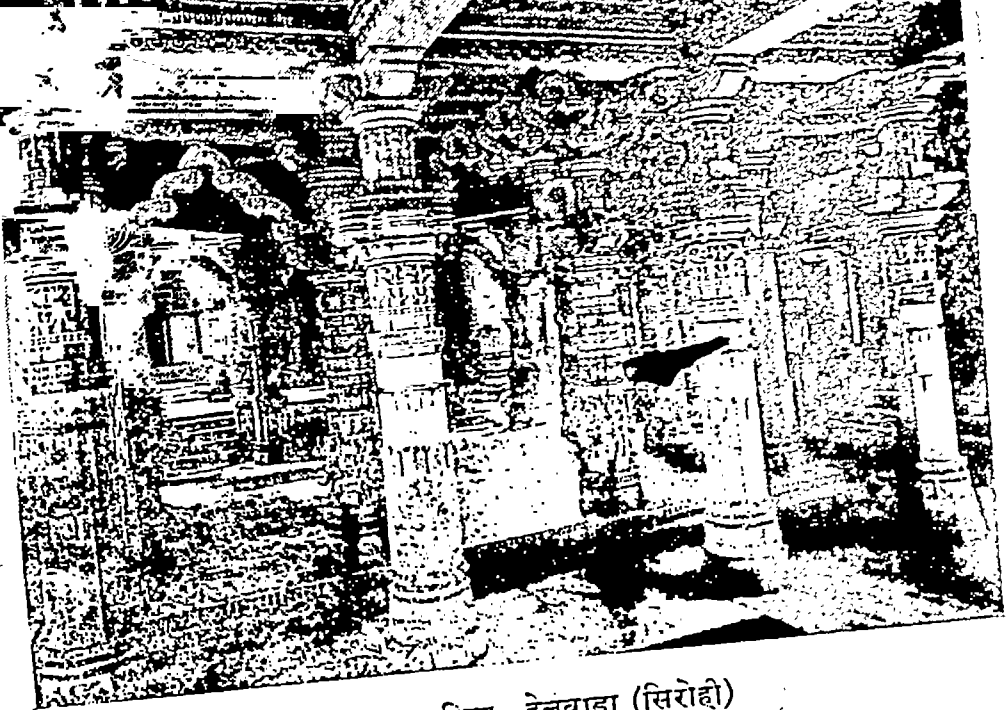
तेजपाल का मन्दिर—देलवाड़ा (सिरोही)
[कापीराइट—डिपार्टमेन्ट आफ आर्केलाजी]

सिरोही

सिरोही का शहर "सिरणवा" नामक पहाड़ी के नीचे बसा होने के कारण सिरोही कहलाया है। सिरोही राज्य के वर्तमान राजा देवड़ा वंश के चौहान राजपूत हैं। इनके मूल पुरुष राव लूंभाजी देवड़ा का इस राज्य पर पूरा अधिकार वि० सं० १३६६ के आस-पास हुआ। उस समय चन्द्रावती उनकी राजधानी थी। वि० सं० १४८२ में आठवें नरेश राव सैंसमल देवड़ा ने सिरोही नगर बसाकर उसे राजधानी बनाया। सिरोही राज्य की ब्रिटिश सरकार से सन् १८२३ ई० में सन्धि हुई। वर्तमान नरेश महाराव तेजसिंह देवड़ा हैं। महाराजा के नाबालिग होने के कारण पांच मन्त्रियों की सहायता से महारानी राज्य-कार्य सँभाल रही हैं। उनमें से तीन मन्त्री कांग्रेस के हैं जिनके नाम श्री गोकुल भाई भट्ट (प्रधान मन्त्री), श्री पुखराजसिंह और श्री लक्ष्मी शंकर कापड़िया है।

राजनैतिक--भारत के अन्य भागों की तरह यहां भी जाग्रति आई और १६३६ में बम्बई में प्रजा मण्डल की स्थापना हुई। जनवरी १६३६ में सात व्यक्तियों की गिरफ्तारी के साथ ही सिरोही खास में प्रजामंडल स्थापित हुआ और धीरे-धीरे प्रचारणों से सभी जगह शाखाएँ खुलीं। एक बार लाठी चार्ज हुआ और नवम्बर १६३६ से पहली लड़ाई की शुरूआत हुई जो मई १६४० में संस्था की रजिस्ट्री के साथ पूर्ण हुई। सन् १६४१ ई० में पुनः कुछ गड़बड़ी शुरू हुई और सभी मुख्य कार्यकर्ता जेलों को भेज दिये गये। अगस्त १६४२ में भारतीय 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के साथ यहां भी तीसरी लड़ाई की शुरूआत हुई।

शुरु से अब तक प्रजामण्डल संस्था को श्री गोकुल भाई भट्ट जैसे की योग्य सलाह व नेतागिरी मिली ! सन् ४२ तक वे ही सभापति रहे जो आज भी राजपूताना प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति हैं।

श्री भीमाशंकर शर्मा शुरू से यहां के कार्यकर्ता थे पर वे इस बीच ही मर गये। श्री शांतिलाल शाह, जो एक योग्य व उत्साही कार्यकर्त्ता थे निर्वासित अवस्था में ही बम्बई में मर गये उनकी यादगार में आबू रोड की जनता ने, जहां के वे निवासी थे, वहां के पार्क का नाम शान्ति पार्क रख दिया है।

दर्शनीय स्थान

सिरोही में पहाड़ पर बने राजमहल देखने योग्य है। राजमहलों से नीचे थोड़ी ही दूर पर जैन मन्दिरों का समूह है जो "देरीसेरी" के नाम से प्रसिद्ध है। इन जैन मन्दिरों में चौमुखजी का मन्दिर मुख्य है जो लगभग ४०० वर्ष पुराना

है। शहर से कुछ ही दूर पर नारणेश्वर महादेव राज्य कुल के देवता है। दूसरे प्रसिद्ध मन्दिरों में बामणवार महावीर स्वामी का मन्दिर, भाड़ोली का शांतिनाथ का मन्दिर आदि है।

वसन्त गढ़

पींडवाड़ा स्टेशन से छै मील दूर वसन्तगढ़ है। यहां की पहाड़ी पर क्षेमंकरी देवी का मन्दिर है।

चन्द्रावती

आबूरोड स्टेशन से चार मील पर चन्द्रावती नामक प्रसिद्ध और प्राचीन नगरी के खण्डहर हैं। यह पहले आबू के परमारों की राजधानी थी। परमारों के बाद वि० सं० १४८२ में सिरोही बसने तक यह देवड़ा चौहानों की भी राजधानी रही। यह नगरी मुसलमानों द्वारा कई बार लूटे जाने के बाद नष्ट हो गई। यहाँ पर संगमरमर के बने बहुत से मन्दिर थे।

आबू पर्वत

सिरोही राज्य के दक्षिण पूर्व में आबू पर्वत है। यह पर्वत आसपास की भूमि से लगभग ४००० फीट ऊंचा है जो ऊपर से समतल मैदान है इसकी ऊंची चोटी गुरु शिखर ५६६० फीट ऊंची है। प्राचीन काल से ही यह पर्वत हिन्दुओं और जैनों का पवित्र स्थान रहा है और इस कारण यहाँ हजारों यात्री बराबर आते जाते रहते हैं। गर्मी के दिनों में यह राजपूताना का शिमला हो जाता है।

अर्बुदा देवी

अर्बुदा देवी (अम्बिका) आबू की मुख्य देवी है जिसका मन्दिर एक ऊंची पहाड़ी के अर्ध बीच में है यहाँ एक गुफा भी है। यह स्थान बहुत पुराना माना जाता है।

देल वाड़ा

अर्बुदा देवी के मन्दिर से एक मील दूर देलवाड़ा गांव में जैनों के मन्दिर है। यहाँ के आदिनाथ और नेमिनाथ के जैन मन्दिर वास्तु कला की दृष्टि से अपूर्व माने जाते हैं। ये मन्दिर ग्यारहवीं शताब्दी के हैं।

विमलशाह ने सन् १०३१ ई० में आदिनाथ का मन्दिर लगभग १८ करोड़ की लागत से बनवाया। इस मन्दिर में मुख्य मूर्ति ऋषभदेव की है जिसमें हीरे पन्ने जड़े हैं। मन्दिर के पास ही विमलशाह की अश्वारूढ़ पत्थर की मूर्ति है वहां हस्तिशाला भी है जिसमें पत्थर के बने दस हाथी हैं। इस मन्दिर के प्रत्येक भाग में वस्तु-कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुंची दिखाई देती है। मन्दिर के स्तम्भ, तोरण, गुम्बज, छत आदि वस्तु कला के विभिन्न नमूनों से भरे पड़े